इस्लाम धर्म

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (रह०)

इस्लाम धर्म

मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी

अनुवादक

मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

मर्कज़ी मक्तबा इस्लामी पब्लिशर्स

नई दिल्ली - 110025

प्रस्तावना

इस्लाम — धर्म आदरणीय मौलाना सैयद अबल आला मौदूदी की किताब रिसाला-ए-दीनियात का हिन्दी रूपान्तर है। मौलाना मौदूदी छोटी-बड़ी ६० से अधिक पुस्तकों के लेखक हैं। उन्होंने इस्लामी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रत्येक स्तम्भ पर लिखा है और जो कुछ लिखा है, सराहनीय है।

प्रस्तुत पुस्तक भी उनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। यह पुस्तक वास्तव में कुरआन की शिक्षा का सारांश है। इस्लाम क्या है? वह जीवन का क्या उद्देश्य निर्धारित करता है? उसने मानव को कौन-सा मार्ग दिखाया है? उसकी कल्पनाएं और मौलिक धारणाएं क्या हैं? इस्लाम में उपासना और आराधना का क्या स्थान है? इस्लाम जीवन व्यवस्था की रूपरेखा है? आदि। इस्लाम से संबन्धित सभी प्रश्नों का उत्तर लेखक ने अपनी इस पुस्तक के रूप में दे दिया है।

इस पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें मन और मस्तिष्क दोनों को एक साथ संतुष्ट करने की चेष्टा की गई है। और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तर्कोपस्थिन का वही सरल और स्वाभाविक ढंग अपनाया गया है जो कुरआन में मिलता है। इस पुस्तक में इस्लाम के आचार-विचार, उपासना, इस्लामी जीवन-व्यवस्था आदि का परिचय ही नहीं कराया गया है, बल्कि इनके पीछे पाई जाने वाली तत्व-दर्शिता (Wisdom) एवं शुभ हित को भी अनावरित करने की कोशिश की गई है।

यह पुस्तक बहुत से इस्लामी स्कूलों और कालेजों के पाठ्य-क्रम में सम्मिलित है। छात्रों के अतिरिक्त दूसरे लोग भी इससे पूरा

फ़ायदा उठा रहे हैं। अरबी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि संसार की कई भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है। उर्दू में केवल भारत में अब तक इसके ११ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

इस पुस्तक का प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के नवीन और संशोधित संस्करण का नवीन रूपान्तर है।

इसके अतिरिक्त जहां ज़रूरी समझा गया व्याख्या सम्बन्धी नोट (Explanatory notes) भी दे दिये गये हैं। किसी भी विषय के अपने कुछ पारिभाषिक शब्द होते हैं। ऐसे शब्दों का बड़ा महत्व होता है। उन शब्दों की अपनी एक आत्मा तथा उनका अपना एक विशेष जीवन और वातावरण होता है। उन शब्दों का ऐसा अनुवाद, जिससे उनके भाव में कोई अन्तर न आये, अत्यन्त कठिन है। इसलिए प्रस्तुत अनुवाद में हमने पारिभाषिक शब्दों को ज्यों-का-त्यों ले लिया है, ताकि इस प्रकार अर्थ के साथ उनकी आत्मा और उनके सूक्ष्म तथा कोमल भावों की भी रक्षा हो सके।

आशा है यह पुस्तक जीवन के मूल तत्वों और समस्याओं को समझने में सहायक होगी। इसके द्वारा पाठकों को इस्लाम का पूर्ण परिचय प्राप्त होगा। यह पुस्तक मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम दोनों ही के लिए उपयोगी है। ग़ैर-मुस्लिमों से हम विशेष रूप से निवेदन करेंगे कि वे हर पक्षपात से अलग होकर इस पुस्तक का अध्ययन करें और इस्लाम को समझने और उसके बारे में सही फ़ैसले पर पहुंचने की कोशिश करें। इस्लाम मानव-जाति तक आमन्त्रण के रूप में पहुंचा है। किसी भी आमन्त्रण की अकारण उपेक्षा कभी भी नहीं हो सकती।

दिल्ली २७/११/१९६७

—मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ां

क्रम

बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त दयावान और कृपाशील है।'

पहला अध्याय

इस्लाम

नामकरण का कारण

संसार में जितने भी धर्म हैं, उनमें से हर एक का नाम या तो किसी विशेष व्यक्ति के नाम पर रखा गया है या उस जाति के नाम पर जिस में वह धर्म पैदा हुआ। मिसाल के तौर पर ईसाई धर्म का नाम इस लिए ईसाई धर्म है कि उस का सम्बन्ध हज़रत ईसा (अ०) से है। बुद्ध मत का नाम इस लिए बुद्ध मत है कि इस के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध थे। ज़रदुश्ती धर्म (Zoroastrianism) का नाम अपने प्रर्वतक ज़रदुश्त (Zoroaster) के नाम पर है। यहूदी धर्म एक विशेष कबीला में पैदा हुआ, जिसका नाम यहूदाह (Judha) था। ऐसा हीं हाल दूसरे धर्मों के नामों का भी है, परन्तु इस्लाम की विशेषता यह है कि वह किसी व्यक्ति या जाति से संबन्धित नहीं है, बल्कि उस का नाम एक विशेष गुण को ज़ाहिर करता है जो ''इस्लाम'' शब्द के अर्थ में पाया जाता है। इस नाम से स्वयं विदित है कि यह किसी व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज नहीं है, न किसी विशेष जाति तक सीमित है। इस का सम्पर्क व्यक्ति, देश या जाति से नहीं, केवल ''इस्लाम का गुण लोगों में पैदा करना इस का उद्देश्य है, प्रत्येक युग और प्रत्येक जाति के जिन सच्चे और नेक लोगों में यह गुण पाया गया है, वे सब ''मुस्लिम'' थे, मुस्लिम हैं और भविष्य में भी होंगे।

इस्लाम शब्द का अर्थ

अरबी भाषा में इस्लाम का अर्थ है, हुक्म मानना, आत्मसमर्पण (Surrender) एवं आज्ञापालन (Submission)। इस्लाम धर्म का नाम 'इस्लाम' इसलिए रखा गया है कि यह अल्लाह के आदेशों का अनुवर्त्तन और उसका आज्ञापालन है।

इस्लाम की वास्तविकता

आप देखते हैं कि दुनिया में जितनी चीज़ें हैं, सब एक नियम और क़ानून के अधीन हैं। चांद और तारे सब एक ज़बरदस्त नियम में बंधे हुए हैं, जिसके विरुद्ध वे तनिक भी हिल नहीं सकते। ज़मीन अपनी विशेष गति के साथ घूम रही है, इसके लिए जो समय, गति और मार्ग नियत किया गया है, उसमें तनिक भी अन्तर नहीं आता। जल और वायु, प्रकाश और ताप सब एक नियम और क़ानून के पाबन्द हैं। जड़-पदार्थ, वनस्पति और जानवरों में से हर एक के लिए जो नियम नियत है, उसी के अनुसार ये सब पैदा होते हैं, बढ़ते हैं और घटते हैं, जीते हैं और मरते हैं। स्वयं मनुष्य की हालत पर भी आप विचार करेंगे तो आप को मालूम होगा कि वह भी प्राकृतिक नियम के अधीन है। जो नियम उसकी पैदाइश के लिए नियत किया गया है, उसी के अनुसार सांस लेता है, जल, आहार, ताप और प्रकाश प्राप्त करता है। उसकी हृदय-गति, उसका खून-संचार, उसके सांस लेने और निकालने की क्रिया, उसी नियम और क़ानून के तहत होती है। उसका मस्तिष्क, उस का आमाशय, उसके फेफड़, उसके स्नायु और मासंपेशियां, उसके हाथ-पांव, जुबान,

---

[1] "इस्लाम" शब्द का एक दूसरा अर्थ है सुलह, शान्ति (Peace), कुशलता, संरक्षण, शरण आदि। मनुष्य को वास्तविक शान्ति उसी समय मिलती है जब कि वह अपने को अल्लाह को अर्पण कर दे और उसी के आदेशों के अनुसार जीवन व्यतीत करने लगे। ऐसे ही जीवन से हृदय भी शान्ति पाता है और समाज में भी इसी से वास्तविक शान्ति की स्थापना होती है।
—अनुवादक

आंखें, कान और नाक, तात्पर्य यह है कि उसके शरीर का एक-एक भाग वही काम कर रहा है, जो उसके लिए निश्चित है। और उसी तरीके से कर रहा है, जो उसको बता दिया गया है।

यह प्रबल नियम जिसमें बड़े-बड़े ग्रहों से ले कर धरती का एक छोटे-से-छोटा कण तक जकड़ा हुआ है, एक महान् शासक का बनाया हुआ नियम है। सम्पूर्ण विश्व और विश्व की प्रत्येक वस्तु उस शासक के आदेश और उसकी आज्ञा का पालन करती है, क्योंकि वह उसी के बनाये हुए नियम का पालन कर रही है, इसलिए सम्पूर्ण विश्व का धर्म इस्लाम है, क्योंकि हम ऊपर बयान कर चुके हैं कि ईश्वर के आज्ञापालन और उसके आदेशानुवर्तन ही को इस्लाम कहते हैं। सूर्य, चन्द्र और तारे सब मुस्लिम हैं। पृथ्वी भी मुस्लिम है, जल, वायु और प्रकाश भी मुस्लिम है। पेड़, पत्थर और जानवर भी मुस्लिम हैं और वह मनुष्य भी जो ईश्वर को नहीं पहचानता, जो ईश्वर का इन्कार करता है, जो ईश्वर के सिवा दूसरों को पूजता है, जो अल्लाह के साथ दूसरों को शरीक करता है, हां, वह भी अपनी प्रकृति और मनोवृत्ति की दृष्टि से मुस्लिम ही है, क्योंकि उसका पैदा होना, जीवित रहना और मरना सब कुछ ईश्वरीय नियम के अन्तर्गत होता है। उसके समस्त अंगों और उसके शरीर के रोम-रोम का धर्म इस्लाम है, क्योंकि वे सब ईश्वरीय नियम के अनुसार बनते और बढ़ते और गतिशील होते हैं, यहां तक कि उसकी वह ज़ुबान भी वास्तव में मुस्लिम है, जिससे वह नादानी के साथ "शिर्क" (अनेकेश्वरवाद) और "कुफ़्र" (अधर्म) सम्बन्धी विचार व्यक्त करता है। उसका वह सिर भी जन्मजात मुस्लिम है, जिसको वह ज़बरदस्ती अल्लाह के सिवा दूसरों के सामने झुकाता है। उसका वह दिल भी स्वभावतः मुस्लिम है, जिसमें वह अज्ञानता के कारण अल्लाह के सिवा दूसरों का आदर और प्रेम रखता है, क्योंकि ये सब चीज़ें ईश्वरीय नियम ही का पालन करती

हैं और इनकी प्रत्येक क्रिया ईश्वरीय नियम ही के अन्तर्गत होती है।

अब एक दूसरे पहलू से देखिए:

मनुष्य की एक हैसियत तो यह है कि वह सृष्टि की अन्य वस्तुओं की तरह प्रकृति के ज़बरदस्त नियमों में जकड़ा हुआ है और उनकी पाबन्दी के लिए मजबूर है।

दूसरी हैसियत यह है कि उसके पास बुद्धि है, सोचने और समझने और निर्णय करने की शक्ति है। वह स्वतंत्रतापूर्वक एक बात को मानता है, दूसरी को नहीं मानता। एक तरीके को पसन्द करता है, दूसरे तरीके को पसन्द नहीं करता। जीवन सम्बन्धी मामलों में अपनी इच्छा से स्वयं एक नियम और क़ानून बनाता है या दूसरों के बनाये हुए नियम और क़ानून को अपनाता है। इस हैसियत में वह संसार की दूसरी चीज़ों की तरह किसी निश्चित क़ानून का पाबन्द नहीं किया गया है। बल्कि उसको अपने विचार, अपनी राय और अपने व्यवहार में चयन सम्बन्धी स्वतंत्रता प्रदान की गई है।

मनुष्य के जीवन में ये दोनों हैसियतें अलग-अलग पाई जाती हैं।

पहली हैसियत में वह संसार की दूसरी सारी चीज़ों के साथ जन्मजात मुस्लिम है और मुस्लिम होने के लिए मजबूर है, जैसा कि अभी आपको मालूम हो चुका है।

दूसरी हैसियत में मुस्लिम होना या न होना उसके अधिकार में है और इसी अधिकार के कारण मनुष्य दो वर्गों में बंट जाता है।

एक मनुष्य वह है जो अपने सृष्टिकर्त्ता और पैदा करने वाले को पहचानता है, उसको अपना स्वामी और प्रभु मानता है और अपने जीवन के ऐच्छिक कार्यों में भी उसी के पसन्द किये हुए क़ानून पर चलता है। वह पूरा मुस्लिम है, उसका इस्लाम पूर्ण हो गया;

क्योंकि अब उसका जीवन पूर्ण रूप से इस्लाम है। अब वह जान-बूझ कर भी उसका आज्ञाकारी बन गया, जिसका आज्ञापालन वह अनजाने भी कर रहा था। अब वह अपने इरादे और मर्ज़ी से भी उसी अल्लाह का आज्ञाकारी है जिसका आज्ञाकारी वह बिना संकल्प के था। अब उसका ज्ञान सच्चा है, क्योंकि वह अल्लाह को जान गया, जिसने उसे जानने और ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति दी है। अब उसकी बुद्धि और उसकी राय ठीक है क्योंकि उसने सोच-समझकर उस ईश्वर के आज्ञापालन का निर्णय किया, जिसने उसे सोचने-समझने और निर्णय करने की योग्यता प्रदान की है। अब उसकी ज़ुबान सच्ची है, क्योंकि वह उस अल्लाह को मान रही है, जिसने उसको बोलने की शक्ति प्रदान की है। अब उसके सम्पूर्ण जीवन में सत्यता-ही-सत्यता है, क्योंकि ऐच्छिक हो या अनैच्छिक दोनों हालतों में वह अल्लाह के क़ानून का पाबन्द है। अब सम्पूर्ण विश्व के साथ उसकी आत्मीयता हो गई, क्योंकि विश्व की सारी चीज़ें जिसकी बंदगी कर रही हैं, उसी की बंदगी वह भी कर रहा है। अब वह ज़मीन पर अल्लाह का प्रतिनिधि (ख़लीफ़ा) है। सम्पूर्ण संसार उसका है और वह अल्लाह का है।

'कुफ़्र' की वास्तविकता

इसके मुक़ाबले में दूसरा मनुष्य वह है जो मुस्लिम पैदा हुआ और अपने जीवन भर अचेतन रूप में मुस्लिम ही रहा; परन्तु अपने ज्ञान और बुद्धि की शक्ति से काम लेकर, उसने ईश्वर को न पहचाना और अपने स्वतंत्र क्षेत्र में उसने अल्लाह का हुक्म मानने से इन्कार कर दिया। यह व्यक्ति 'काफ़िर' है। 'कुफ़्र' का मौलिक अर्थ है छिपाना और परदा डालना। ऐसे व्यक्ति को इसलिए 'काफ़िर' कहा जाता है कि उसने अपनी सहज प्रकृति पर नादानी का परदा डाल रखा है। उसकी जन्मजात प्रकृति और स्वभाव इस्लाम की

प्रकृति के अनुरूप है। उसका सारा शरीर और शरीर का हर भाग इस्लाम की प्रकृति के अनुसार काम कर रहा है। उसके चारों ओर सारी दुनिया इस्लाम पर चल रही है; परन्तु उसकी अक़्ल पर परदा पड़ गया है। सम्पूर्ण संसार की ओर स्वयं अपनी प्रकृति उससे छुप गई है। वह उसके विरुद्ध सोचता है और उसके विरुद्ध चलने की कोशिश करता है।

अब आप समझ सकते हैं कि जो व्यक्ति काफ़िर है, वह कितनी बड़ी गुमराही में पड़ा हुआ है।

'कुफ़्र' की हानियां

'कुफ़्र' एक प्रकार की अज्ञानता है, बल्कि वास्तविक अज्ञानता कुफ़्र ही है। इससे बढ़कर और क्या अज्ञानता हो सकती है कि मनुष्य ईश्वर से अपरिचित हो। एक व्यक्ति दुनिया के इतने बड़े कारख़ाने को दिन-रात चलते हुए देखता है, परन्तु नहीं जानता कि इस कारख़ाने को बनाने और चलाने वाला कौन है और वह कौन कारीगर है, जिसने कोयले और लोहे और कैल्शियम और सोडियम और ऐसी ही कुछ चीज़ों को मिलाकर मनुष्य जैसे अनुपम प्राणी की रचना कर दी। एक व्यक्ति संसार में हर ओर ऐसी चीज़ें और ऐसे काम देखता है, जिनमें अद्वितीय इंजीनियरी, गणितज्ञता, रसायन ज्ञान और समस्त प्रतिभाओं के चमत्कार दिखाई देते हैं; परन्तु वह नहीं जानता कि वह ज्ञान, तत्व ज्ञान (wisdom) और बुद्धिमत्ता वाली सत्ता कौन सी है, जिसने विश्व में ये समस्त कार्य किये हैं। सोचिए और विचार कीजिए ऐसे व्यक्ति के लिए वास्तविक ज्ञान के द्वार कैसे खुल सकते हैं, जिसको ज्ञान का पहला सिरा ही न मिला हो? चाहे वह कितना ही सोच-विचार करे और कितना ही तलाश और खोज में सिर खपाये, उसको किसी विभाग में ज्ञान का सीधा और यथार्थ मार्ग न मिलेगा; क्योंकि उसे आरम्भ में भी अंधेरा

दीख पड़ेगा और अन्त में भी वह अंधेरे के सिवा कुछ न देखेगा।

'कुफ़्र' एक ज़ुल्म है, बल्कि सबसे बड़ा ज़ुल्म कुफ़्र ही है। आप जानते हैं कि ज़ुल्म किसे कहते हैं? ज़ुल्म यह है कि किसी चीज़ से उसके स्वभाव और प्रकृति के विरुद्ध ज़बरदस्ती काम लिया जाये। आप को मालूम हो चुका है कि दुनिया में जितनी चीज़ें हैं सब ईश्वरीय आज्ञा के अधीन हैं और उनकी प्रकृति ही "इस्लाम" अर्थात् ईश्वरीय विधि एवं नियम का पालन करना है। स्वयं मनुष्य का सम्पूर्ण शरीर और उसका प्रत्येक भाग जन्मजात इसी प्रकृति के अनुरूप है। अल्लाह ने इन चीज़ों पर मनुष्य को थोड़ा-सा इख़्तियार अवश्य प्रदान किया है, परन्तु हर चीज़ की प्रकृति यह चाहती है कि उससे ईश्वरीय इच्छा के अनुसार काम लिया जाये; किन्तु जो व्यक्ति 'कुफ़्र' करता है वह इन सब चीज़ों से उनकी प्रकृति के विरुद्ध काम लेता है, वह अपने दिल में दूसरों की बड़ाई, प्रेम और भय को जगह देता है, हालांकि दिल की प्रकृति यह चाहती है कि उसमें अल्लाह की बड़ाई और उसका प्रेम और उसका भय हो। वह अपनी समस्त इन्द्रियों से और दुनिया की उन सब चीज़ों से, जो उसके अधिकार में हैं, ईश्वरीय इच्छा के विरुद्ध काम लेता है हालांकि हर चीज़ की प्रकृति यह चाहती है कि उससे ईश्वरीय विधि एवं नियम के अनुसार काम लिया जाये। बताइए ऐसे व्यक्ति से बढ़कर और कौन ज़ालिम होगा जो अपने जीवन में हर समय हर चीज़ पर यहां तक कि स्वयं अपने-आप पर भी ज़ुल्म करता रहे।

'कुफ़्र' केवल ज़ुल्म ही नहीं, विद्रोह और अकृतज्ञता और नमकहरामी भी है। तनिक सोचिए मनुष्य के पास उसकी अपनी क्या चीज़ है? अपने मस्तिष्क को उसने बनाया या ईश्वर ने? अपने दिल, अपनी आंखों और अपनी ज़बान और अपने हाथ-पांव और अपने समस्त अंगों का वह स्वयं बनाने वाला है या ईश्वर? उसके चारों ओर जितनी चीज़ें हैं, उनको पैदा करने वाला स्वयं मनुष्य है

या ईश्वर? इन सब चीज़ों को मनुष्य के लिए लाभदायक और उपयोगी बनाना और मनुष्य को उनके उपयोग की शक्ति देना मनुष्य का अपना काम है या ईश्वर का? आप कहेंगे ये सब चीज़ें ईश्वर की हैं। ईश्वर ही ने इनको पैदा किया है, ईश्वर ही इनका मालिक है और ईश्वर ही के प्रदान करने से ये मनुष्य को प्राप्त हुई हैं। जब अस्ल सच्चाई यह है तो उससे बड़ा विद्रोही कौन होगा जो ईश्वर के दिये हुए दिमाग़ से ईश्वर ही के विरुद्ध सोचे, ईश्वर के दिए हुए दिल में ईश्वर ही के विरुद्ध भावनाओं को जगह दे। ईश्वर ने जो आंखे, जो ज़ुबान, जो हाथ-पांव और जो दूसरी चीज़ें उसको प्रदान की हैं, उनको ईश्वर की ही पसन्द और उसकी इच्छा के विरुद्ध प्रयोग में लाये। यदि कोई नौकर अपने मालिक का नमक खाकर उसके साथ विश्वासघात करता है तो आप उसको नमकहराम कहते हैं। यदि कोई सरकारी कर्मचारी हुकूमत के दिये हुए अधिकारों का प्रयोग हुकूमत ही के विरुद्ध करता है, तो आप उसे विद्रोही कहते हैं। यदि कोई उस व्यक्ति के साथ जिसका उस पर उपकार हो विश्वासघात करता है तो आप उसे कृतघ्न कहते हैं, परन्तु मनुष्य के प्रति मनुष्य की नमकहरामी, विश्वासघात और कृतघ्नता की क्या वास्तविकता है? मनुष्य दूसरे मनुष्य को कहां से जीविका देता है? वह ईश्वर की ही दी हुई जीविका तो है। हुकूमत अपने कर्मचारियों को जो अधिकार देती है, वे कहां से आए हैं? ईश्वर ही ने तो सत्ता-प्रदान की है। कोई उपकार करने वाला दूसरे व्यक्ति पर कहां से उपकार करता है? सब-कुछ ईश्वर ही का तो दिया हुआ है। मनुष्य पर सबसे बड़ा हक़ उसके मां-बाप का है, परन्तु मां-बाप के दिल में सन्तान के प्रति प्रेम किसने पैदा किया? मां के सीने में दूध किसने उतारा? बाप के दिल में यह बात किसने डाली कि अपने गाढ़े पसीने की कमाई खाल-मांस के एक बेकार लोथड़े पर खुशी-खुशी लुटा दे और उसके पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा

में अपना समय, अपना धन, अपना आराम-चैन सब कुछ निछावर कर दें? अब बताओ कि जो ईश्वर मनुष्य का वास्तविक उपकारकर्ता है, वास्तविक सम्राट् है, सबसे बड़ा पालनकर्ता है यदि उसी के साथ मनुष्य 'कुफ़्र' करे, उसको ईश्वर न माने, उसकी बन्दगी से इन्कार करे और उसके आज्ञापालन से मुंह मोड़े, तो यह कैसा घोर विद्रोह है, कृतघ्नता और नमकहरामी है।

कहीं यह न समझ लीजिए कि 'कुफ्र' से मनुष्य अल्लाह का कुछ बिगाड़ता है। जिस सम्राट का राज्य इतना बड़ा है कि हम बड़ी-से-बड़ी दूरबीन लगाकर भी अब तक यह मालूम न कर सके कि वह कहां से आरम्भ होता है और कहां समाप्त होता है;[१] जिस बादशाह की शक्ति इतनी अपार है कि हमारी पृथ्वी और सूर्य और मंगल और ऐसे ही करोड़ों ग्रह उसके इशारे पर गेंद की तरह फिर रहे हैं; जिस

---

१. विश्व के विराट विस्तार का अन्दाज़ा इससे किया जा सकता है कि जिस सौर जगत में हमारी पृथ्वी सम्मिलित है उसके दूरस्थ ग्रह की दूरी सूर्य से कम-से-कम २ अरब ७९ करोड़ ३० लाख मील होगी। यह सौर-जगत् एक आकाश-गंगा (Galaxy) का एक लघु अंश मात्र है। उस आकाश- गंगा में जिससे हमारे सौर्य-जगत् का सम्बन्ध है लगभग ३ अरब सूर्य वर्तमान हैं। उनमें निकटतम सूर्य भी इतनी दूरी पर है कि उसका प्रकाश हम तक ४ वर्ष में पहुंच पाता है, जब कि प्रकाश की गति प्रति सेकण्ड १८६००० मील है। फिर यह आकाश-गंगा जिससे हमारे सौर्य जगत् का सम्बन्ध है पूरा विश्व नहीं है, बल्कि वह लगभग २० लाख नीहारिकाओं (Spiral Nebulas) में से एक है, जिनमें से निकटतम नीहारिका की दूरी भी इतनी है कि उसका प्रकाश हम तक १० लाख वर्षों में पहुंच पाता है। रहे वे पिण्ड जो अत्यन्त दूरी पर अवस्थित हैं जिन्हें अधिकाधिक शक्ति-सम्पन्न दूरबीनों से देखा जा सका है उनका प्रकाश पृथ्वी तक पहुंचने में १० करोड़ वर्ष लग जाते हैं। यह भी याद रहे कि मनुष्य अब तक जो कुछ देख सका है वह ईश्वर के राज्य का बहुत छोटा सा भाग है। —अनुवादक

सम्राट की सम्पत्ति ऐसी अपार है कि सम्पूर्ण विश्व में जो कुछ है उसी का है, उसमें कोई उसका साझी नहीं, जो सम्राट ऐसा निरपेक्ष है कि सब उसके मुहताज और उपजीवी हैं और वह किसी का मुहताज नहीं, भला मनुष्य की क्या हस्ती है कि उसके मानने या न मानने से ऐसे सम्राट को कोई हानि पहुंच सके। उससे 'कुफ़्र' और सरकशी की नीति अपना कर मनुष्य उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ता, हां अपने विनाश का सामान अवश्य करता है।

'कुफ़्र' और अवज्ञा का लाज़मी नतीजा यह है कि मनुष्य सदा के लिए असफल और मनोरथ में विफल हो जाये। ऐसे व्यक्ति को ज्ञान का सीधा मार्ग कभी न मिल सकेगा, क्योंकि जो ज्ञान स्वयं अपने पैदा करने वाले को न जाने, वह किस चीज़ को सही जान सकता है। उसकी बुद्धि सदा टेढ़े मार्ग को अपनायेगी, क्योंकि जो बुद्धि स्वयं अपने बनाने वाले को पहचानने में ग़लती करे, वह और किस चीज़ को सही समझ सकती है, वह अपने जीवन के सभी मामलों में ठोकरें खायेगा। उसका स्वभाव बिगड़ेगा। उसकी संस्कृति विकृत होगी। उसका समाज बिगाड़ का शिकार होगा। उसकी जीविका के सभी उद्योग भ्रष्ट होंगे। उसका शासन बुरा और राजनीति दोषपूर्ण होगी। वह संसार में अशान्ति फैलायेगा, रक्तपात करेगा, दूसरों का हक़ छीनेगा, ज़ुल्म और अत्याचार करेगा, स्वयं अपने जीवन को अपने बुरे विचारों और अपनी शरारत और दुष्कृत्यों से अपने लिए कटु एवं अप्रिय बना लेगा। फिर जब वह इस लोक से परलोक (आख़िरत की दुनिया) में पहुंचेगा तो वे सब चीज़ें जिन पर वह जीवन भर ज़ुल्म करता रहा था, उसके ख़िलाफ़ नालिश करेंगी। उसका मस्तिष्क, उसका हृदय, उसकी आंखें, उसके कान, उसके हाथ-पांव तात्पर्य यह कि उसका रोम-रोम अल्लाह की अदालत में फ़रियाद करेगा कि इस ज़ालिम ने तेरे विरुद्ध विद्रोह किया और इस विद्रोह में हमसे ज़बरदस्ती काम

लिया। वह धरती, जिस पर वह अवज्ञाकारी होकर चला और बसा; वह रोज़ी, जिसको उसने अवैध रूप से कमाया; और वह दौलत , जो हराम से आई और हराम पर ख़र्च की गई; वे सब चीज़ें जिन्हें विद्रोही बनकर वह आहार रूप में प्रयोग में लाया, वे सब उपकरण और साधन, जिनसे उसने इस विद्रोह में काम लिया, उसके मुक़ाबले में अभियोगी और फ़रियादी बन कर आएंगे और अल्लाह जो वास्तविक न्यायकर्ता है, इन पीड़ितों की फ़रियाद सुनेगा और इस विद्रोही को अपमानजनक दण्ड देगा।

इस्लाम के फ़ायदे

ये हैं 'कुफ़्र' की हानियां। आइये, अब तनिक यह भी देखिए कि इस्लाम का तरीक़ा अपनाने में क्या फ़ायदा है।

ऊपर आपको मालूम हो चुका है कि इस लोक में हर तरफ़ ईश्वर के प्रभुत्व की निशानियां फैली हुई हैं। विश्व का यह विराट कारख़ाना जो एक पूर्ण व्यवस्था और एक अटल क़ानून के अन्तर्गत चल रहा है स्वयं इस बात का साक्षी है कि इसका बनाने वाला और चलाने वाला एक अपार शक्ति वाला शासक है, जिसके शासन के विरुद्ध कोई भी चीज़ सिर नहीं उठा सकती। सम्पूर्ण विश्व की तरह स्वयं मनुष्य की प्रकृति भी यही है कि उसका हुक्म माने, अतएव अचेतन रूप में वह रात-दिन उसका आज्ञापालन कर ही रहा है, क्योंकि उसके प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर के वह जीवित ही नहीं रह सकता।

परन्तु ईश्वर ने मनुष्य की ज्ञान की योग्यता, सोचने-समझने की शक्ति और बुरे-भले की परख देकर इरादे और अधिकार में थोड़ी-सी आज़ादी प्रदान की है। इस आज़ादी में वस्तुतः मनुष्य की परीक्षा है, उसके ज्ञान की परीक्षा है, उसकी बुद्धि की परीक्षा है, उसके विवेक की परीक्षा है और इस बात की परीक्षा है कि उसे जो

स्वतत्रता प्रदान की गई है, उसको वह किस प्रकार प्रयोग में लाता है। और इस परीक्षा में कोई एक तरीक़ा अपनाने को मनुष्य को बाध्य नहीं किया गया है, क्योंकि बाध्य और विवश करने से परीक्षा का उद्देश्य ही ख़त्म हो जाता है। आप स्वयं समझ सकते हैं कि परीक्षा में प्रश्न-पत्र देने के बाद यदि आप को एक विशेष उत्तर देने को बाध्य और विवश कर दिया जाये तो ऐसी परीक्षा से कोई लाभ न होगा। आपकी वास्तविक योग्यता का प्रदर्शन तो उसी समय हो सकता है जबकि आप को हर प्रकार का उत्तर देने का अधिकार प्राप्त हो। यदि आपने ठीक उत्तर दिया तो सफल हो गये और भावी उन्नति का द्वार आपके लिए खुल जायेगा। और यदि ठीक उत्तर न दिया तो असफल होंगे और अपनी अयोग्यता से स्वयं अपनी उन्नति का रास्ता रोक लेंगे। ठीक इसी प्रकार अल्लाह ने भी अपनी परीक्षा में मनुष्य को स्वतंत्र रखा है ताकि वह जो तरीक़ा चाहे, अपनाये।

अब एक व्यक्ति तो वह है जो स्वयं अपनी और विश्व की प्रकृति को नहीं समझता, अपने सृष्टिकर्ता की हस्ती और उसके गुण को पहचानने में भूल करता है और अधिकार की जो आज़ादी उसे दी गई है उसे अनुचित लाभ उठाकर वह अवज्ञा और सरकशी की रीति अपनाता है। यह व्यक्ति ज्ञान, बुद्धि और विवेक और कर्तव्यपरायणता की परीक्षा में असफल हो गया। उसने ख़ुद साबित कर दिया कि वह हर प्रकार से निचले दर्जे का व्यक्ति है, इसलिए उसका वही अंजाम होना चाहिए जो आपने ऊपर देख लिया।

इसके मुक़ाबले में एक दूसरा व्यक्ति है, जो इस परीक्षा में सफल हो गया। उसने ज्ञान और बुद्धि से सही काम लेकर ईश्वर को जाना और माना, हालांकि वह ऐसा करने को बाध्य नहीं किया गया था। उसने भलाई और बुराई के परखने में भी ग़लती न की और स्वत्रंत रूप से उसने भलाई को ही पसन्द किया, यद्यपि बुराई की

ओर भी झुकने की आज़ादी उसे प्राप्त थी। उसने अपनी प्रकृति को समझा, अपने ईश्वर को पहचाना और अवज्ञा की स्वतंत्रता प्राप्त होने पर भी ईश्वर के आज्ञापालन की रीति ही अपनाई। उस व्यक्ति को परीक्षा में इसी कारण तो सफलता मिली कि उसने अपनी बुद्धि से ठीक काम लिया, आंखों से ठीक देखा, कानों से ठीक सुना, मस्तिष्क से ठीक विचार निर्धारित किया और दिल से उसी बात पर चलने का फ़ैसला किया जो ठीक था। उसने सत्य को पहचान कर यह भी सिद्ध कर दिया कि वह सत्य को पहचानता है और सत्य के आगे नतमस्तक होकर यह भी दिखा दिया कि वह सत्य का पुजारी है।

स्पष्ट है कि जिस व्यक्ति में ये गुण मौजूद हों, उसको इस लोक और परलोक दोनों में सफल होना ही चाहिए।

वह ज्ञान और व्यवहार के हर क्षेत्र में उचित मार्ग अपनायेगा इसलिए कि जो व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को जानता है और उसके गुणों को पहचानता है, वह वास्तव में ज्ञान के आदि को भी जानता है और अंत को भी। ऐसा व्यक्ति कभी ग़लत राहों में नहीं भटक सकता, क्योंकि उसका पहला क़दम भी सही पड़ा है और जिस आख़िरी मंज़िल पर उसे जाना है, उसको भी वह निश्चित रूप से जानता है। अब वह दार्शनिक सोच-विचार से विश्व के रहस्यों को समझने की कोशिश करेगा, परन्तु एक 'काफ़िर दार्शनिक' की तरह कभी संदेहों और संशयों की भूलभुलैयों में गुम न होगा। वह विज्ञान के द्वारा प्राकृतिक नियमों को जानने की कोशिश करेगा, विश्व के दिए हुए ख़ज़ानों को निकालेगा, ईश्वर ने जो शक्तियां संसार में और स्वयं मनुष्य के अस्तित्व में पैदा की हैं, उन सबको ढूंढ़-ढूंढ़ कर मालूम करेगा। ज़मीन और आसमान में जितनी चीज़ें हैं, उन सबसे काम लेने के अच्छे-से अच्छे तरीक़े मालूम करेगा,

परन्तु आस्तिकता हर अवसर पर उसे विज्ञान का अनुचित उपयोग करने से रोकेगी। वह कभी इस भ्रम में न पड़ेगा कि मैं इन चीज़ों का मालिक हूं, मैंने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है, मैं अपने लाभ के लिए विज्ञान से सहायता लूंगा, संसार को अस्त-व्यस्त कर डालूंगा, लूट-मार और रक्तपात करके अपनी शक्ति का सिक्का सारे संसार पर बिठा दूंगा। यह एक 'काफ़िर' (अविश्वासी) वैज्ञानिक (Scientist) का काम है।[1] मुस्लिम वैज्ञानिक विज्ञान का जितना

कुछ ऐसी ही परिस्थिति है, जिसका सामना आज के मनुष्य को करना पड़ रहा है। जोड (Dr. Joad) ने कितना सही कहा है: "विज्ञान ने हमें ऐसी शक्तियां प्रदान की हैं जो देवताओं को मिलने योग्य हैं, और हम उसके प्रयोग में विद्यालय-छात्र और अयोग्य व्यक्ति जैसी मनोवृत्ति और बुद्धि (Mentality) से काम लेते हैं।" प्रसिद्ध दार्शनिक बरट्रेण्ड रसल (Bertrand Russel) ने लिखा है:—

"विस्तृत रूप में कहा जाये तो हम एक ऐसी दौड़ के मध्य में हैं जिसका साधन तो मानव की कुशलता और चतुरता है और जिसका अन्त मानव-मूर्खता पर होता है, जिन्हें प्राप्त करने की इच्छित कुशलता एवं कुशाग्रता की प्रत्येक वृद्धि बुरे परिणाम तक ले जाती है। मानव-जाति की दौड़ ने अज्ञान और अनिपुणता के मुकाबले में जीने के लिए यहां संघर्ष किया है, परन्तु मूर्खता से मिश्रित प्राप्त ज्ञान और कुशलता ने ज़िंदगी को ग़ैर-यक़ीनी ही बनाया है। ज्ञान शक्ति है, परन्तु यह शक्ति बुराई में भी उतनी ही लगाई जा सकती है जितनी भलाई में। इससे यह नतीजा निकलता है कि यदि मनुष्य तत्वदर्शिता (wisdom) में उतनी उन्नति नहीं करता जितनी वह ज्ञान (Knowledge) के बढ़ाने में करता है तो यह ज्ञान की वृद्धि (वास्तव में) दुःख की वृद्धि होगी।"

(1 40 Impact of Science on Society pp.120-21)

एक दूसरे विचारक का कथन है: "हमने वायु में पक्षी की भांति उड़ना और जल में मछलियों की तरह तैरना सीख लिया है; परन्तु हम यह नहीं जानते कि भूमि पर किस प्रकार रहा जाये।"

(Quoted by Joad in Counter Attack From the East. page 28)

—अनुवादक

अधिक पारंगत होगा उतना ही अधिक ईश्वर पर उसका विश्वास बढ़ेगा और उतना ही अधिक वह अल्लाह का शुक्रगज़ार दास बनेगा। उसका यह विश्वास होगा कि मेरे स्वामी ने मेरी शक्ति और मेरे ज्ञान में जो वृद्धि की है उससे अपनी और सभी इंसानों की भलाई के लिए कोशिश करूंगा और यही वास्तव में उसका आभार है।

इसी तरह इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, क़ानून और अन्य विद्याओं और कलाओं में भी एक मुस्लिम अपनी खोज और कोशिश की दृष्टि से एक काफ़िर के मुक़ाबले में कम न रहेगा, परन्तु दोनों की नज़र में बड़ा अन्तर होगा। मुस्लिम प्रत्येक विद्या का अध्ययन सही नज़रिए से करेगा, सही उद्देश्य के लिए करेगा और सही नतीजे पर पहुंचेगा। इतिहास में वह मनुष्य के पिछले अनुभवों से ठीक-ठीक शिक्षा लेगा, जातियों की उन्नति एवं अवनति के वास्तविक कारण मालूम करेगा, उन की सभ्यता और संस्कृति की लाभदायक चीज़ों का ज्ञान प्राप्त करेगा, उनके नेक व्यक्तियों के वृत्तान्तों से फ़ायदा उठायेगा और उन सभी चीज़ों से बचेगा जिन के कारण पिछली जातियां तबाह हो गईं। अर्थशास्त्र में धन कमाने और खर्च करने के ऐसे तरीक़े मालूम करेगा जिन से सभी मनुष्यों का लाभ हो, यह नहीं कि एक का लाभ और बहुतों की हानि हो। राजनीति में उसका पूरा ध्यान इस ओर होगा कि संसार में शान्ति, न्याय, भलाई और सज्जनता एवं सुशीलता का शासन हो। कोई व्यक्ति या कोई गिरोह ईश्वर के बन्दों को अपना बन्दा न बनाये, शासन और उसकी समस्त शक्तियों को ईश्वर की अमानत समझा जाये और ईश्वर के बन्दों की भलाई के लिए इस्तेमाल में लाया जाये। क़ानून में वह इस दृष्टि से विचार करेगा कि न्याय और इन्साफ़ के साथ लोगों का हक़ निश्चित किया जाये और किसी प्रकार से किसी पर ज़ुल्म न होने पाये।

मुस्लिम के नैतिक जीवन में ईश-भय, सत्यनिष्ठा और सत्यवादिता होगी। वह दुनिया में यह समझ कर रहेगा कि सब चीज़ों का मालिक अल्लाह है। मेरे पास और समस्त मनुष्यों के पास जो कुछ है ईश्वर ही का दिया हुआ है। मैं किसी चीज़ का यहां तक कि खुद अपने शरीर और शारीरिक शक्तियों का भी मालिक नहीं हूं। सब-कुछ अल्लाह की अमानत है और इस अमानत को इस्तेमाल में लाने का जो अधिकार मुझ को दिया गया है उस को ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इस्तेमाल में लाना चाहिए। एक दिन ईश्वर मुझ से अपनी यह अमानत वापस लेगा और उस समय मुझ को एक-एक चीज़ का हिसाब देना होगा।

यह समझ कर जो व्यक्ति दुनिया में रहे उस के स्वभाव का अन्दाज़ा कीजिए। वह अपने मन को बुरे विचारों से शुद्ध रखेगा, वह अपने मस्तिष्क को बुराई के चिन्तन से बचायेगा, वह अपनी आंखों को बुरी निगाह से रोकेगा, वह अपने कानों को बुराई सुनने से रोक रखेगा, वह अपनी ज़बान की हिफ़ाज़त करेगा, ताकि उससे हक़ के खिलाफ़ कोई बात न निकले, वह अपने पेट को हराम रोज़ी से भरने की अपेक्षा भूखा रहना ज़्यादा पसन्द करेगा, वह अपने हाथों को ज़ुल्म के लिए कभी न उठायेगा, वह अपने पांव को बुराई के रास्ते पर कभी न चलायेगा, वह अपने सिर को असत्य के आगे कभी न झुकायेगा, चाहे वह काट ही क्यों न डाला जाये, वह अपनी किसी इच्छा और किसी ज़रूरत को ज़ुल्म और नाहक़ के रास्ते से कभी न पूरा करेगा, वह सदाचार और सज्जनता की मूर्ति होगा, हक़ और सच्चाई को अधिक प्रिय समझेगा और उसके लिए अपने प्रयत्न, व्यक्तिगत लाभ और अपने मन की प्रत्येक इच्छा को बल्कि अपने आप को निछावर कर देगा, वह अन्याय और असत्य को हर चीज़ से अधिक अप्रिय मानेगा और किसी हानि के भय से या किसी लाभ के लोभ में उस का साथ देने पर तैयार न होगा।

सांसारिक सफलता भी ऐसे ही व्यक्ति को प्राप्त होती है। उससे बढ़ कर संसार में कोई प्रतिष्ठित और सज्जन न होगा, क्योंकि उसका सिर ईश्वर के सिवा किसी के सामने झुकने वाला नहीं, और उस का हाथ ईश्वर के सिवा किसी के आगे फैलने वाला नहीं, अपमान ऐसे व्यक्ति के समीप कैसे फटक सकता है।

उससे बढ़ कर संसार में कोई शक्तिशाली भी न होगा क्योंकि उसके मन में ईश्वर के सिवा किसी का डर नहीं और उसको ईश्वर के सिवा किसी से पुरस्कार और इनाम का लोभ भी नहीं। कौन-सी शक्ति है जो ऐसे व्यक्ति को हक़ और सच्चाई से हटा सकती हो और कौन-सा धन है जो उसका ईमान मोल ले सकता हो।

उससे बढ़ कर संसार में कोई सम्पन्न और धनवान भी न होगा, क्योंकि वह विलासप्रिय नहीं, वासनाओं का दास नहीं, लोभी और लालची नहीं। अपने उचित परिश्रम से जो कुछ कमाता है, उसी पर उसे सन्तोष होता है और अवैध धन के ढेर भी उसके सामने लगा दिये जायें तो उनको तुच्छ जान कर ठुकरा देता है। यह इत्मिनान का धन है जिस से बड़ा कोई धन मनुष्य के लिए नहीं हो सकता।

उससे बढ़ कर संसार में कोई प्रेम-पात्र और लोकप्रिय भी न होगा, क्योंकि वह हर व्यक्ति का हक़ अदा करेगा और किसी का हक़ न मारेगा। हर एक से नेकी करेगा और किसी के साथ बुराई न करेगा, बल्कि हर व्यक्ति की भलाई की कोशिश करेगा और उसके बदले में अपने लिए कुछ न चाहेगा। लोगों के दिल आप-से-आप उसकी ओर खिचेंगे और प्रत्येक व्यक्ति उसका सम्मान और उससे प्रेम करने को मजबूर होगा।

उससे बढ़ कर संसार में कोई विश्वासपात्र भी न होगा, क्योंकि वह अमानत में ख़यानत न करेगा। सच्चाई से मुंह न

मोड़ेगा। वादे का सच्चा और मामले का खरा होगा और वह हर काम में यह समझ कर ईमानदारी से काम लेगा कि कोई और देखने वाला हो या न हो परन्तु ईश्वर तो सब-कुछ देख रहा है, ऐसे व्यक्ति की साख का क्या पूछना! कौन है जो उस पर भरोसा न करेगा।

एक मुस्लिम के चरित्र को भली-भांति समझ लीजिए तो आप को यक़ीन हो जायेगा कि मुस्लिम कभी संसार में अपमानित और पराजित और पराधीन बन कर नहीं रह सकता। वह हमेशा प्रभावशाली और शासक ही रहेगा, क्योंकि इस्लाम जो गुण उसमें पैदा करता है कोई शक्ति उन पर प्रभुता प्राप्त नहीं कर सकती।

इस प्रकार संसार में सम्मान और गौरव का जीवन गुज़ारने के बाद जब वह अपने ईश्वर के सामने हाज़िर होगा तो उस पर ईश्वर अपने प्रसाद और दयालुता की वर्षा करेगा, क्योंकि जो अमानत उसे सौंपी गई थी उसका पूरा-पूरा हक़ उसने अदा कर दिया और जिस इम्तिहान में ईश्वर ने उसको डाला था उसमें वह पूरे-पूरे अंकों के साथ कामियाब हुआ। यह अमर सफलता है जो इस लोक से परलोक तक लगातार चली जाती है और कहीं उसका सिलसिला समाप्त नहीं होता।

यह इस्लाम है, मानव का स्वभाविक धर्म। यह किसी जाति और देश तक सीमित नहीं। हर युग और हर देश में जो ईश-ज्ञान रखने वाले सत्य-प्रिय लोग हुये हैं उन सबका यही धर्म था। वे सब मुस्लिम थे, भले ही उनकी भाषा में इस धर्म का नाम इस्लाम रहा हो या कुछ और।

दूसरा अध्याय

ईमान और आज्ञापालन

आज्ञापालन के लिए ज्ञान और विश्वास की आवश्यकता

पिछले अध्याय में आप जान चुके हैं कि 'इस्लाम' वास्तव में पालनकर्ता (ईश्वर) के आज्ञापालन का नाम है। अब हम बताना चाहते हैं कि मनुष्य सर्वश्रेष्ठ ईश्वर की आज्ञा का पालन उस समय तक नहीं कर सकता, जब तक उसे कुछ बातों का ज्ञान न हो, और वह ज्ञान, विश्वास (Faith) की सीमा तक पहुंचा हुआ न हो।

सबसे पहले तो मनुष्य को ईश्वर की सत्ता पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए, क्योंकि यदि उसे यह विश्वास न हो कि ईश्वर है तो वह उसका आज्ञापालन कैसे करेगा। इसके साथ ईश्वरीय गुणों का ज्ञान भी ज़रूरी है। जिस व्यक्ति को यह मालूम न हो कि ईश्वर एक है और प्रभुत्व में कोई उसका साझी नहीं, वह दूसरों के सामने सिर झुकाने और हाथ फैलाने से कैसे बच सकता है? जिस व्यक्ति को इस बात का यक़ीन न हो कि ईश्वर सब-कुछ देखने और सुनने वाला है, और हर चीज़ की ख़बर रखता है, वह अपने-आप को ईश्वर की अवज्ञा से कैसे रोक सकता है? इस बात पर जब आप विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि विचार और स्वभाव और इस्लाम के सीधे मार्ग पर चलने के लिए मनुष्य में जिन गुणों का होना आवश्यक है वे गुण उस समय तक उसमें नहीं आ सकते जब तक कि उसे ईश-गुणों की ठीक-ठीक जानकारी न हो और यह ज्ञान केवल जान लेने तक सीमित न रहे बल्कि उसे विश्वास के साथ दिल में बैठ जाना चाहिए, ताकि मनुष्य का मन उसके ज्ञान-विरोधी

विचारों से और उसका जीवन उसके ज्ञान के विरुद्ध आचरण करने से बच सके।

इसके बाद मनुष्य को यह भी मालूम होना चाहिए कि ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का सही तरीका क्या है? किस बात को अल्लाह पसन्द करता है, ताकि उसे अपनाया जाये, और किस बात को अल्लाह नापसन्द करता है, ताकि उससे बचा जाए। इसके लिए ज़रूरी है कि मनुष्य अल्लाह के कानून और उसके विधान से भली-भांति परिचित हो। उसके विषय में उसे पूरा विश्वास हो कि यही अल्लाह का कानून और विधान है और इस का अनुसरण करने से अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है, क्योंकि यदि उसे इसका ज्ञान ही न हो तो वह पालन किस चीज़ का करेगा? और यदि ज्ञान तो हो परन्तु पूरा विश्वास न हो, या मन में यह भावना बनी हो कि इस कानून और विधान के अतिरिक्त दूसरा कानून और विधान भी ठीक हो सकता है, तो उसका भली-भांति पालन कैसे कर सकता है? फिर मनुष्य को इसका ज्ञान भी होना चाहिए कि ईश्वरीय इच्छा के अनुसार न चलने और उसके पसंद किये हुए नियम एवं विधान का पालन न करने का अंजाम क्या है और उसके आज्ञापालन का पुरस्कार क्या है? इसके लिए ज़रूरी है कि आख़िरत (परलोक) के जीवन का, ईश्वर के न्यायालय में पेश होने का, अवज्ञा का दण्ड पाने का और आज्ञापालन पर इनाम पाने का पूरा ज्ञान और विश्वास हो। जो व्यक्ति 'आख़िरत' के जीवन से अपरिचित है वह आज्ञापालन और अवज्ञा दोनों को निष्फल समझता है। उसका विचार तो यह है कि अन्त में आज्ञापालन करने वाला और न करने वाला दोनों बराबर ही रहेंगे, क्योंकि दोनों मिट्टी हो जायेंगे। फिर उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह आज्ञापालन की पाबन्दियां और तकलीफ़ें उठाना स्वीकार कर लेगा

और उन गुनाहों से बचेगा जिनसे इस संसार में कोई हानि पहुंचने का उसको भय नहीं है। ऐसे विश्वास के साथ मनुष्य ईश्वरीय नियम और क़ानून का कभी पालन करने वाला नहीं हो सकता। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी आज्ञापालन की रीति को दृढ़तापूर्वक अपना नहीं सकता जिसे आख़िरत के जीवन और अल्लाह की अदालत में पेश होने का ज्ञान तो है, परन्तु विश्वास नहीं, इसलिए कि संदेह और द्विविधा के साथ मनुष्य किसी बात पर टिका नहीं रह सकता। आप एक काम को दिल लगाकर उसी समय कर सकेंगे जब आपको विश्वास हो कि यह काम लाभप्रद है। और दूसरे काम से बचने में भी उसी समय स्थिर रह सकते हैं जब आपको पूरा विश्वास हो कि यह काम हानिप्रद है। अतएव मालूम हुआ कि एक तरीक़े पर चलने के लिए उसके फल और परिणाम का ज्ञान होना भी आवश्यक है। और यह ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो विश्वास की सीमा तक पहुंचा हुआ हो।

'ईमान' का अर्थ

ऊपर के बयान में जिस चीज़ को हमने ज्ञान और विश्वास कहा है, उसी का नाम 'ईमान' है। ईमान का अर्थ जानना और मानना है। जो व्यक्ति ईश्वर के एक होने को और उसके वास्तविक गुणों और उसके क़ानून और नियम और उसके दण्ड और पुरस्कार को जानता हो और दिल से उस पर विश्वास रखता हो उसको 'मोमिन' (ईमान रखने वाला) कहते हैं। और ईमान का परिणाम यह है कि मनुष्य 'मुस्लिम' अर्थात् अल्लाह का आज्ञाकारी और अनुवर्ती हो जाता है।

ईमान की इस परिभाषा से आप स्वयं समझ सकते हैं कि ईमान के बिना कोई मनुष्य मुस्लिम नहीं हो सकता। इस्लाम और ईमान में वही सम्बन्ध है जो वृक्ष और बीज में होता है। बीज के

बिना तो वृक्ष उग ही नहीं सकता। हां, यह अवश्य हो सकता है कि बीज भूमि में बोया जाये, परन्तु भूमि ख़राब होने के कारण या जलवायु अच्छी प्राप्त न होने के कारण वृक्ष दोषयुक्त उगे। ठीक इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति सिरे से ईमान ही न रखता हो तो यह किसी तरह संभव नहीं कि वह "मुस्लिम" हो। हां, यह अवश्य संभव है कि किसी के दिल में ईमान हो परन्तु अपने संकल्प की कमज़ोरी या अपूर्ण शिक्षा-दीक्षा और बुरे लोगों के साथ प्रभाव से वह पूरा और पक्का मुस्लिम न हो।

ईमान और इस्लाम की दृष्टि से समस्त मनुष्यों की चार श्रेणियां हैं:

१. जो ईमान रखते हैं और उनका ईमान उन्हें ईश्वर के आदेशों का पूर्ण रूप से अनुवर्ती बना देता है। जो बात ईश्वर को नापसन्द है वे उससे इस तरह बचते हैं जैसे कोई व्यक्ति आग को हाथ लगाने से बचता है और जो बात ईश्वर को पसन्द है उसे वे ऐसे शौक़ से करते हैं जैसे कोई व्यक्ति दौलत कमाने के लिए शौक़ से काम करता है। ये वास्तविक मुस्लिम हैं।
२. जो 'ईमान' तो रखते हैं परन्तु उनके ईमान में इतना बल नहीं कि उन्हें पूर्ण रूप से अल्लाह का आज्ञाकारी बना दे। ये यद्यपि निम्न श्रेणी के लोग हैं, परन्तु फिर भी मुस्लिम ही हैं। ये यदि ईश्वरीय आदेशों की अवहेना करते हैं तो अपने अपराध की दृष्टि से दण्ड के भागी हैं; परन्तु उनकी हैसियत अपराधी की है, विद्रोही की नहीं है। इसलिए कि ये सम्राट को सम्राट मानते हैं और उसके क़ानून का क़ानून होना स्वीकार करते हैं।
३. वे जो ईमान नहीं रखते परन्तु देखने में वे ऐसे कर्म करते

हैं जो ईश्वरीय क़ानून के अनुकूल दिखाई देते हैं। ये वास्तव में विद्रोही हैं। इनका वाह्य सत्कर्म वास्तव में ईश्वर का आज्ञापालन और अनुवर्तन नहीं है। अतः इस का कुछ भी मूल्य नहीं। इनकी मिसाल ऐसे व्यक्ति जैसी है जो सम्राट को सम्राट नहीं मानता और उसके क़ानून को क़ानून ही नहीं स्वीकार करता। यह व्यक्ति यदि देखने में कोई ऐसा काम कर रहा हो जो क़ानून के विरुद्ध न हो, तो आप यह नहीं कह सकते कि वह सम्राट के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने वाला और उसके क़ानून का अनुवर्ती है। उसकी गणना तो प्रत्येक अवस्था में विद्रोहियों में ही होगी।

४. वे जो ईमान भी नहीं रखते और कर्म की दृष्टि से भी दुष्ट और दुराचारी हैं, ये निकृष्टतम श्रेणी के लोग हैं, क्योंकि ये व्रिदोही भी हैं और बिगाड़ पैदा करने वाले भी।

मानवीय श्रेणी के इस वर्गीकरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईमान वास्तव में मानवीय सफलता का आधार है। इस्लाम, चाहे वह पूर्ण हो या अपूर्ण, केवल ईमान रूपी बीज से पैदा होता है। जहां ईमान न होगा, वहां ईमान की जगह 'कुफ़्र' होगा जिसका दूसरा अर्थ ईश्वर के प्रति विद्रोह है, चाहे निकृष्टतम कोटि का विद्रोह हो या न्यूनतम स्तर का।

ज्ञान-प्राप्ति का साधन

ईश्वरीय आज्ञापालन के लिए 'ईमान' की आवश्यकता तो आपको मालूम हो गई। अब प्रश्न यह है कि ईश्वर के गुण और उसके पसन्ददीदा क़ानून और आख़िरत (परलोक) के जीवन के सम्बन्ध में सच्चा ज्ञान और ऐसा ज्ञान जिस पर विश्वास किया जा सके, कैसे प्राप्त हो सकता है?

पहले हम बयान कर चुके हैं कि विश्व में हर तरफ़ ईश्वर की कारीगरी की निशानियां (चिह्न) मौजूद हैं, जो इस बात की गवाह हैं कि इस कारख़ाने को एक ही कारीगर ने बनाया है और वही इसको चला रहा है और इन निशानियों में सर्वश्रेष्ठ ईश्वर के समस्त गुणों की छवि दीख पड़ती है। उसकी तत्त्वदर्शिता (Wisdom), उसका ज्ञान, उसका सामर्थ्य, उसकी दयालुता, उसकी पालन-क्रिया, उसका प्रकोप, तात्पर्य यह है कि कौन-सा गुण है जिसकी गरिमा उसके कामों से व्यक्त न होती हो, परन्तु मनुष्य की बुद्धि और उसकी योग्यता से इन चीज़ों को देखने और समझने में बहुधा भूल हुई है। ये समस्त निशानियां आंखों के सामने मौजूद हैं परन्तु फिर भी किसी ने कहाः ईश्वर दो हैं और किसी ने कहा तीन हैं, किसी ने अनगिनत ईश्वर मान लिये। किसी ने प्रभुत्व के टुकड़े-टुकड़े कर दिये और कहाः एक वर्षा का प्रभु है, एक वायु का प्रभु है, एक अग्नि का ईश्वर है, तात्पर्य यह कि एक-एक शक्ति के अलग-अलग ईश्वर हैं और एक ईश्वर इन सबका नायक है। इस तरह ईश्वर की सत्ता और उसके गुणों को समझने में लोगों की बुद्धि ने बहुत धोखे खाये हैं जिनके विवरण का यहां मौक़ा नहीं।

'आख़िरत' (परलोक) के जीवन के विषय में भी लोगों ने बहुत-से असत्य विचार स्थिर किये। किसी ने कहा कि मनुष्य मर कर मिट्टी हो जायेगा, फिर उसके बाद कोई जीवन नहीं। किसी ने कहा मनुष्य बार-बार इस दुनिया में जन्म लेगा और अपने कर्मों के अनुसार दण्ड या पुरस्कार प्राप्त करेगा।

ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने के लिए जिस क़ानून की पाबन्दी आवश्यक है उसको तो स्वयं अपनी बुद्धि से निर्धारित करना और भी अधिक कठिन है।

यदि मनुष्य के पास अत्यन्त ठीक बुद्धि हो और उसकी ज्ञान सम्बन्धी योग्यता निहायत उच्चकोटि की हो, तब भी वर्षों के

अनुभवों और सोच-विचार के पश्चात् वह किसी हद तक इन बातों के बारे में कोई राय क़ायम कर सकेगा। और फिर भी उसको पूर्ण विश्वास न होगा कि उसने पूर्ण रूप से सत्य को जान लिया है, यद्यपि बुद्धि और ज्ञान की पूर्ण रूप से परीक्षा तो इसी प्रकार हो सकती थी। मनुष्य बिना किसी मार्ग-दर्शन के छोड़ दिया जाता, फिर ज़ो लोग अपनी कोशिश और योग्यता से सत्य और सच्चाई तक पहुंच जाते वही सफल होते और जो न पहुंचते वे असफल रहते, परन्तु ईश्वर ने अपने बन्दों को ऐसी कठिन परीक्षा में नहीं डाला। उसने अपनी दया से स्वयं मनुष्यों ही में ऐसे मनुष्य पैदा किये जिनको अपने गुणों का यथार्थ ज्ञान दिया। वह तरीक़ा भी बताया जिससे मनुष्य संसार में ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन-यापन कर सकता है। आख़िरत (परलोक) के जीवन के सम्बन्ध में भी यथार्थ ज्ञान प्रदान किया और उन्हें आदेश दिया कि दूसरे मनुष्यों तक यह ज्ञान पहुंचा दें। ये अल्लाह के पैग़म्बर (सन्देष्टा) हैं। जिस साधन से अल्लाह ने उनको ज्ञान दिया है उसका नाम वह्य (Revelation, देवी प्रकाशन) है। और जिस ग्रन्थ में उन्हें यह ज्ञान दिया गया है उसको ईश्वरीय ग्रन्थ और अल्लाह का कलाम (ईश-वाणी) कहते हैं। अब मनुष्य और उसकी योग्यता की परीक्षा इसमें है कि वह पैग़म्बर के पवित्र जीवन को देखने और उसकी उच्च शिक्षा पर विचार करने के पश्चात् उस पर 'ईमान' लाता है या नहीं। यदि वह न्यायशील और सत्य-प्रिय है तो सच्ची बात और सच्चे मनुष्य की शिक्षा को मान लेगा और परीक्षा में सफल हो जायेगा। और यदि उसने न माना तो इन्कार का अर्थ यह होगा कि उसने सत्य और सच्चाई को समझने और स्वीकार करने की क्षमता खो दी है। यह इन्कार उसको परीक्षा में असफल कर देगा और ईश्वर और उसके क़ानून और आख़िरत के जीवन के विषय में वह कभी सही ज्ञान प्राप्त न कर सकेगा।

परोक्ष (ग़ैब) पर 'ईमान'

देखिए जब आपको किसी चीज़ का ज्ञान नहीं होता तो आप ज्ञान वाले व्यक्ति की खोज करते हैं और उसके आदेश के अनुसार आचरण करते हैं। आप बीमार होते हैं तो खुद अपना इलाज नहीं कर लेते बल्कि डाक्टर के पास जाते हैं। डाक्टर का प्रामाणिक होना, उसका अनुभवी होना, उसके हाथ से बहुत से रोगियों का अच्छा होना, ये ऐसी बातें हैं जिनके कारण आप 'ईमान' ले आते हैं कि उत्तम इलाज के लिए जिस योग्यता की आवश्यकता है वह उस डाक्टर में पाई जाती है। इसी ईमान (विश्वास) के कारण वह जिस दवा को जिस ढंग से सेवन करने को कहता है उसका आप सेवन करते हैं और जिस-जिस चीज़ से बचने का हुक्म देता है उससे बचते हैं। इसी तरह क़ानून के मामले में आप वकील पर 'ईमान' लाते हैं और उसके आदेशों का पालन करते हैं। शिक्षा के विषय में अध्यापक पर 'ईमान' लाते हैं और वह जो कुछ आपको बताता है उसको मानते चले जाते हैं। आपको कहीं जाना हो, और रास्ता मालूम न हो तो किसी जानकार व्यक्ति पर 'ईमान' लाते हैं और जो मार्ग वह आपको बताता है उसी पर चलते हैं। तात्पर्य यह है कि दुनिया के हर मामले में आपको जानकारी और ज्ञान प्राप्त करने के लिए किसी जानने वाले आदमी पर 'ईमान' लाना पड़ता है और उसके आदेशों का पालन करने पर आप मजबूर होते हैं, इसी का नाम परोक्ष (ग़ैब) पर ईमान है।

परोक्ष पर ईमान का अर्थ यह है कि जो कुछ आपको मालूम नहीं उसका ज्ञान आप जानने वालों से प्राप्त करें। और उस पर विश्वास कर लें। ईश्वर की सत्ता और गुण से आप परिचित नहीं हैं। आपको यह भी मालूम नहीं कि उसके फ़रिश्ते उसके आदेश के अन्तर्गत सम्पूर्ण विश्व का काम कर रहे हैं और आपको हर तरफ़ से

घेरे हुए हैं। आपको यह भी ख़बर नहीं कि ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का तरीक़ा क्या है? आपको आख़िरत (परलोक) के जीवन का भी सही हाल मालूम नहीं। इन सब बातों का ज्ञान आपको एक ऐसे मनुष्य के द्वारा प्राप्त होता है जिसकी सच्चाई, सत्यवादिता, ईश-भय, पवित्रतम जीवन और तत्वदर्शिता-सम्बन्धी बातों को देखकर आप मानते हैं कि वह जो कुछ कहता है, सच कहता है और उसकी सब बातें विश्वास करने योग्य हैं। यही परोक्ष पर ईमान है। अल्लाह का आज्ञापालन और उसकी इच्छा के अनुसार आचरण करने के लिए परोक्ष पर ईमान आवश्यक है, क्योंकि पैग़म्बर के सिवा किसी और साधन से आपको सही ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता और सही ज्ञान के बिना आप इस्लाम के तरीक़े पर ठीक-ठीक चल नहीं सकते।

तीसरा अध्याय

नुबूवत

पिछले अध्याय में आपको तीन बातें बताई गई हैं।

एक यह कि ईश्वर के आज्ञापालन के लिए ईश्वर की सत्ता और गुण और उसके पसन्ददीदा मार्ग और 'आख़िरत' के दण्ड और पुरस्कार के विषय में सही ज्ञान की आवश्यकता है। और यह ज्ञान ऐसा होना चाहिए कि जिस पर आपको पूर्ण विश्वास अर्थात् 'ईमान' प्राप्त हो।

दूसरे यह कि ईश्वर ने मनुष्य को इतनी कठिन परीक्षा में नहीं डाला है कि वह स्वयं अपनी कोशिश से यह ज्ञान प्राप्त करे, बल्कि उसने स्वयं मनुष्यों ही में से कुछ चुने हुए बन्दों (अर्थात् पैग़म्बरों) को 'वह्य' के द्वारा यह ज्ञान प्रदान किया और उन्हें हुक्म दिया कि दूसरे बन्दों तक इस ज्ञान को पहुंचायें।

तीसरे यह कि आम जनता पर अब केवल इतनी ज़िम्मेदारी है कि वे अल्लाह के सच्चे पैग़म्बरों (संदेष्टाओं) को पहचानें, जब उनको मालूम हो जाये कि अमुक व्यक्ति वास्तव में ईश्वर का सच्चा पैग़म्बर है तो उनका कर्तव्य है कि जो कुछ वह शिक्षा दे उस पर ईमान लायें और जो कुछ वह हुक्म दे उसको मानें और जिस तरीक़े पर वह चले उस पर चलें।

अब सबसे पहले हम आपको यह बताना चाहते हैं कि पैग़म्बरी (नुबूवत) की वास्तविकता क्या है और पैग़म्बरों को कैसे पहचाना जाये?

पैग़म्बरी की वास्तविकता

आप देखते हैं कि संसार में मनुष्य को जिन-जिन चीज़ों की आवश्यकता होती है, अल्लाह ने उन सबका इंतिज़ाम स्वयं ही कर दिया है। बच्चा जब पैदा होता है, तो देखिए कितनी सामग्री उसे देकर संसार में भेजा जाता है। देखने के लिए आंखें, सुनने के लिए कान, सूंघने और सांस लेने के लिए नाक, स्पर्श-ज्ञान के लिए सम्पूर्ण शरीर की त्वचा में अनुभव-शक्ति, चलने के लिए पांव, काम करने के लिए हाथ, सोचने के लिए मस्तिष्क और ऐसी ही बेशुमार दूसरी चीज़ें जो पहले से उसकी सब ज़रूरतों का ध्यान रखते हुए उसके छोटे से छोटे शरीर में लपेट कर रख दी गई हैं। फिर जब वह दुनिया में क़दम रखता है तो जीवन यापन के लिए इतनी सामग्री उसको मिलती है जिसकी आप गणना भी नहीं कर सकते। वायु है, प्रकाश है, ताप है, जल है, पृथ्वी है, मां के स्तन में पहले से दूध मौजूद है, माता-पिता और सम्बन्धी, यहां तक कि दूसरे लोगों के दिलों में भी उसके प्रति प्यार और वात्सल्य पैदा कर दिया गया है जिससे उसका पालन-पोषण होता है। फिर जितना-जितना वह बढ़ता जाता है उसकी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए हर प्रकार का सामान उसको मिलता जाता है और ऐसा लगता है मानो धरती और आकाश की समस्त शक्तियां उसके पालन-पोषण और सेवा के लिए कार्य कर रही हैं।

इसके बाद और आगे बढ़िये। दुनिया के काम करने के लिए जितनी योग्यताओं की आवश्यकता है, वे सब मनुष्य को दी गई हैं, शारीरिक शक्ति, समझ-बूझ, बोलने की शक्ति और ऐसी ही बहुत-सी योग्यताएं थोड़ी या बहुत, हर मनुष्य में पाई जाती हैं, परन्तु यहां अल्लाह ने अद्‌भुत प्रबन्ध किया है कि समस्त योग्यताएं सब मनुष्यों को समान रूप से नहीं दीं। यदि ऐसा होता तो कोई

किसी का मुहताज न होता, न कोई किसी की परवाह करता। इसलिए ईश्वर ने समस्त मनुष्यों की सामूहिक आवश्कताओं को ध्यान में रखते हुए समस्त योग्यतायें पैदा तो मनुष्यों ही में कीं परन्तु इस तरह की किसी को एक योग्यता अधिक दे दी और दूसरे को दूसरी योग्यता, आप देखते हैं कि कुछ लोग शारीरिक परिश्रम की शक्तियां दूसरे से अधिक लेकर आते हैं। कुछ लोगों में किसी विशेष कला या व्यवसाय की जन्मजात योग्यता होती है, जिससे दूसरे वंचित होते हैं। और कुछ लोगों में बुद्धि की तीव्रता और बौद्धिक शक्ति दूसरों से अधिक होती है। कुछ जन्म-जात सेनानी होते हैं। कुछ में प्रशासन की विशेष योग्यता होती है। कुछ भाषण की असाधारण शक्ति लेकर पैदा होते हैं। कुछ में लिखने की स्वाभाविक प्रतिभा पाई जाती है। कोई व्यक्ति ऐसा पैदा होता है कि उसकी बुद्धि गणित में अधिक काम करती है यहां तक कि उसके बड़े-बड़े जटिल प्रश्नों को इस तरह वह हल कर देता है कि दूसरों की बुद्धि वहां तक नहीं पहुंचती। एक दूसरा व्यक्ति ऐसा होता है कि जो अदभुत चीज़ों का आविष्कार करता है और उसके आविष्कारों को देखकर संसार चकित रह जाता है। एक और व्यक्ति ऐसा अनुपम क़ानूनी दिमाग़ लेकर आता है कि क़ानून की जो सूक्ष्म और मर्म की बातें वर्षों तक विचार करने पर भी दूसरों की समझ में नहीं आतीं उसकी नज़र अपने-आप उन तक पहुंच जाती है, यह ईश्वरीय देन है। कोई व्यक्ति स्वयं ये योग्यतायें अपने अन्दर पैदा नहीं कर सकता। न शिक्षा-दीक्षा से ये चीज़ें पैदा होती हैं। वास्तव में ये जन्मजात योग्यतायें हैं। और ईश्वर अपनी तत्त्वदर्शिता (wisdom) से जिसको यह योग्यता चाहता है प्रदान कर देता है।

ईश्वर की इस देन पर भी विचार करेंगे तो आपको मालूम होगा कि मानव-संस्कृति के लिए जिन योग्यताओं की ज़रूरत अधिक होती है वह अधिक मनुष्यों में पैदा की जाती हैं और जिनकी

आवश्यकता जितनी कम होती है वह उतने ही कम मनुष्यों में पैदा की जाती है। सैनिक अधिक पैदा होते हैं। किसान और बढ़ई और लुहार ऐसे ही दूसरे कामों के आदमी अधिक पैदा होते हैं; परन्तु ज्ञान-संबन्धी और बौद्धिक शक्तियां रखने वाले और राजनीति और सेनापति की योग्यता रखने वाले अधिकारी कम पैदा होते हैं। फिर वे लोग और भी कम मिलते हैं जो किसी विशेष विद्या और कला में असाधारण योग्यता के अधिकारी हों, क्योंकि उनके महान् कार्य के कारण शताब्दियों तक लोगों को उन जैसे कुशल जानकार की आवश्यकता नहीं रहती।

अब सोचना चाहिए कि संसार में मानव-जीवन को सफल बनाने के लिए केवल यही एक आवश्यकता तो नहीं है कि लोगों में इंजीनियर, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, क़ानूनविद, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्र के आचार्य और विभिन्न पेशों की योग्यता रखने वाले लोग ही पैदा हों। इन सबसे बढ़कर एक और आवश्यकता भी तो है और वह यह कि कोई ऐसा हो जो लोगों को ईश्वरीय मार्ग बताये। दूसरे लोग तो केवल यह बताने वाले हैं कि इस संसार में मनुष्य के लिए क्या है, और उसको किस प्रकार इस्तेमाल में लाया जा सकता है, परन्तु कोई यह बताने वाला भी तो होना चाहिए कि मनुष्य स्वयं किस लिए है? और मनुष्य को संसार में यह सब सामग्री किसने दी है? और उस देने वाले की इच्छा क्या है? ताकि मनुष्य उसी के अनुसार संसार में जीवन व्यतीत करके निश्चित एवं शाश्वत सफलता प्राप्त करे। यह मनुष्य की वास्तविक और सबसे बड़ी ज़रूरत है और बुद्धि यह मानने से इन्कार करती है कि जिस ईश्वर ने हमारी छोटी-से-छोटी ज़रूरतों को पूरा करने का प्रबन्ध किया है, उसने ऐसी महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति में असावधानी से काम लिया होगा। नहीं, ऐसा कदापि नहीं है। ईश्वर ने जिस प्रकार एक-एक विद्या और

एक-एक विद्या एवं विज्ञान की विशेष योग्यता रखने वाले व्यक्ति पैदा किये हैं उसी प्रकार ऐसे व्यक्ति भी पैदा किये हैं जिनमें स्वयं ईश्वर को पहचानने की उत्तम योग्यता थी। उसने उन्हें धर्म (दीन) नैतिकता और आचारशास्त्र (शरीअत) का ज्ञान अपने पास से दिया और उन्हें इस सेवा-कार्य पर नियुक्त किया कि दूसरे लोगों को इन चीजों की शिक्षा दें। यही वे लोग हैं जिन को हमारी भाषा में 'नबी' या रसूल या पैग़म्बर (ईशदूत या सन्देष्टा) कहा जाता है।

पैग़म्बर की पहचान

जिस प्रकार दूसरी विद्याओं और कलाओं के कुशल व्यक्ति एक विशेष बुद्धि और एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति लेकर पैदा होते हैं, उसी प्रकार पैग़म्बर भी एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति लेकर आते हैं।

एक जन्मजात कवि की कविताओं को सुनते ही हम को मालूम हो जाता है कि यह काव्य की विशेष प्रतिभा लेकर पैदा हुआ है, क्योंकि दूसरे लोग चाहे कितनी ही कोशिश करें उस जैसी पद-रचना नहीं कर सकते। इसी प्रकार एक जन्मजात वक्ता, एक जन्मसिद्ध लेखक, एक जन्मसिद्ध आविष्कारक, एक जन्मजात नेता भी अपने महान कार्यों से स्पष्ट रूप में पहचान लिया जाता है, क्योंकि इनमें से हर एक अपने काम में असाधारण योग्यता का प्रदर्शन करता है, जो दूसरों में नहीं होता। ऐसा ही हाल पैग़म्बर का भी है। उसके मन में वे बातें आती हैं जो दूसरे सोच भी नहीं सकते। वह ऐसे विषयों का वर्णन करता है, जिनका उसके सिवा कोई वर्णन नहीं कर सकता। उसकी दृष्टि ऐसी बारीक बातों तक अपने-आप पहुंच जाती है जिन तक दूसरों की दृष्टि वर्षों के सोच-विचार के पश्चात् भी नहीं पहुंचती। वह जो कुछ कहता है

हमारी बुद्धि को स्वीकृत होता है। हमारा मन गवाही देता है कि अवश्य ऐसा ही होना चाहिए। सांसारिक अनुभव और विश्व के निरीक्षणों से उसकी एक-एक बात सच्ची साबित होती है, परन्तु यदि हम स्वयं उस तरह की बात कहना चाहें तो नहीं कह सकते। फिर उसकी मनोवृत्ति इतनी पवित्र होती है कि वह हर मामले में सच्ची, सीधी और सज्जनता की नीति अपनाता है। वह कभी कोई झूठी बात नहीं कहता, कोई बुरा काम नहीं करता। सदैव सदाचार और सच्चाई की शिक्षा देता है और जो कुछ दूसरों से कहता है, उस पर खुद चल कर दिखाता है। उसके जीवन में कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि वह जो कुछ कहे उसके विरुद्ध आचरण करे। उसके कथन और व्यवहार में कोई व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं होता। वह दूसरों के हित के लिए स्वयं हानि सहता है और अपने हित के लिए किसी को हानि नहीं पहुंचाता । उसका सम्पूर्ण जीवन सच्चाई, सज्जनता, सुशीलता, पवित्रता, उच्च विचार और सर्वोच्च मानवता का आदर्श होता है जिसमें ढूंढ़ने से भी कोई दोष दीख नहीं पड़ता। इन्हीं चीज़ों को देख कर साफ़ पहचान लिया जा सकता है कि यह व्यक्ति ईश्वर का सच्चा पैग़म्बर है।

पैग़म्बर का आज्ञापालन

जब यह मालूम हो जाए कि अमुक व्यक्ति ईश्वर का सच्चा पैग़म्बर है तो उसकी बात को मानना, उसका आज्ञापालन करना और उसके तरीक़े का अनुपालन करना आवश्यक है। यह बात अक़्ल के एकदम ख़िलाफ़ है कि आप एक व्यक्ति का पैग़म्बर होना स्वीकार भी करें और फिर उसकी बात भी न मानें, क्योंकि पैग़म्बर मानने का अर्थ यह है कि आपने मान लिया कि वह जो कुछ कह रहा है ईश्वर की ओर से कह रहा है और जो कुछ कर रहा है ईश्वरीय इच्छा के अनुसार कर रहा है। अब आप जो कुछ उसके विरुद्ध

कहेंगे या करेंगे वह ईश्वर के विरुद्ध होगा और जो बात ईश्वर के विरुद्ध हो वह कभी सत्य और न्यायानुकूल नहीं हो सकती। अतएव किसी को पैग़म्बर मानने से यह बात आप-से-आप ज़रूरी हो जाती है कि उसकी बात को बिना किसी बहस के मान लिया जाये और उसके हुक्म के आगे सिर झुका दिया जाये, चाहे उसका आंतरिक उद्देश्य और उसका लाभ आप की समझ में आये या न आये। जो बात पैग़म्बर की ओर से है उसका पैग़म्बर की ओर से होना ही इस बात का सुबूत है कि वह सच्ची है और समस्त तत्वदर्शिता और हितकर तत्त्व उसमें पाये जाते हैं। यदि आपकी समझ में किसी बात का प्रयोजन नहीं आता तो इस का अर्थ यह नहीं कि उस बात में कोई ख़राबी है। जिस व्यक्ति को किसी विद्या या कला में कुशलता प्राप्त नहीं है वह उस का मर्मज्ञ नहीं हो सकता, परन्तु वह कितना मूर्ख होगा यदि वह किसी विद्या के मर्मज्ञ की बात केवल इस लिए न माने कि उसकी समझ में वह बात नहीं आती। देखिए संसार के प्रत्येक कार्य में उसके जानकार की आवश्यकता होती है और जानकार व्यक्ति की सम्मति लेने के पश्चात् उस पर पूरा भरोसा किया जाता है और उसके कार्य में हस्तक्षेप नहीं किया जाता, क्योंकि सब लोग सब कामों के विशेषज्ञ नहीं हो सकते और न दुनिया भर की सब चीज़ों को समझ सकते हैं। आपको अपनी समस्त बुद्धि और चालाकी का उपयोग केवल इस बात में करना चाहिए कि एक अच्छे-से-अच्छा विशेषज्ञ खोजें। जब किसी के बारे में आप को विश्वास हो जाए कि वह सबसे अच्छा जानकार है तो उस पर आपको पूरा भरोसा करना चाहिए। फिर उसके कार्यों में हस्तक्षेप करना और एक-एक बात के बारे में यह कहना कि पहले हमें समझा दो नहीं तो हम न मानेंगे, बुद्धिमानी नहीं बल्कि सर्वथा मूर्खता है। किसी वकील को मुकदमा सौंपने के बाद आप ऐसे

वाद-विवाद करेंगे, तो आप को अपने दफ़्तर से निकाल देगा। किसी डाक्टर से आप उसके एक-एक आदेश के विषय में कारण जानना चाहेंगे तो वह आपका इलाज करना छोड़ देगा। ऐसा ही मामला धर्म का भी है। आपको ईश-ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है। आप जानना चाहते हैं कि ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का तरीक़ा क्या है? आप के पास स्वयं इन चीज़ों के मालूम करने का कोई साधन नहीं है। अब आप का कर्तव्य है कि ईश्वर के सच्चे पैग़म्बर की तलाश करें। इस तलाश में आपको अत्यन्त बुद्धिमत्ता और समझ-बूझ से काम लेना चाहिए, क्योंकि यदि आपने किसी ऐसे व्यक्ति को पैग़म्बर समझ लिया जो पैग़म्बर नहीं, तो वह आपको असत्य मार्ग पर लगा देगा, परन्तु जब आपको भली-भांति जांच-पड़ताल करने के पश्चात् यह विश्वास हो जाये कि अमुक व्यक्ति ईश्वर का सच्चा पैग़म्बर है तो उस पर आप को पूर्णरूप से विश्वास करना चाहिए और उसके प्रत्येक आदेश का पालन करना चाहिए।

पैग़म्बरों पर ईमान लाने की आवश्यकता

जब आप को मालूम हो गया कि इस्लाम का सच्चा और सीधा मार्ग वही है जो ईश्वर की ओर से उसका पैग़म्बर बताये, तो यह बात आप स्वयं समझ सकते हैं कि पैग़म्बर पर ईमान लाना और उसका आज्ञापालन और अनुवर्त्तन करना समस्त मनुष्यों के लिए आवश्यक है और जो व्यक्ति पैग़म्बर के तरीक़े को छोड़ कर स्वयं अपनी बुद्धि से कोई तरीक़ा निकालता है वह निश्चय ही गुमराह है।

इस मामले में लोग विचित्र ग़लतियां करते हैं। कुछ लोग ऐसे हैं जो पैग़म्बर की सच्चाई को मानते हैं, परन्तु न उस पर ईमान लाते हैं, न उसके आदेशों का पालन करते हैं। ये केवल 'काफ़िर' ही

नहीं मूर्ख भी हैं, क्योंकि पैग़म्बर को सच्चा मानने के पश्चात् उसके आदेशों का पालन न करने का अर्थ यह है कि मनुष्य जान-बूझ कर असत्य का अनुगामी हो। स्पष्ट है कि इससे बढ़ कर कोई मूर्खता नहीं हो सकती।

कुछ लोग कहते हैं कि हमें पैग़म्बर के पीछे चलने की आवश्यकता ही नहीं, हम स्वयं अपनी बुद्धि से सत्य-मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। यह भी बड़ी भूल है। आपने रेखागणित की शिक्षा प्राप्त की है और आप यह जानते हैं कि एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक सीधी रेखा एक ही हो सकती है। इसके सिवा जितनी भी रेखायें खींची जायेंगी वे सब या तो टेढ़ी होंगी या उस दूसरे बिन्दु तक न पहुंचेंगी। ऐसी ही हालत सत्य-मार्ग की भी है जिसको इस्लाम की भाषा में 'सिराते मुस्तक़ीम' (सीधा मार्ग) कहा जाता है। यह मार्ग मनुष्य से आरम्भ होकर ईश्वर तक जाता है और रेखागणित के इसी नियम के अनुसार यह भी एक ही मार्ग हो सकता है। इसके सिवा जितने मार्ग भी होंगे या तो सब टेढ़े होंगे या ईश्वर तक न पहुंचेंगे। अब विचार कीजिए कि जो सीधा मार्ग है वह तो पैग़म्बर ने बता दिया है। और उसके सिवा कोई दूसरा मार्ग 'सिराते मुस्तक़ीम' (सरल मार्ग) है ही नहीं। इस मार्ग को छोड़कर जो व्यक्ति स्वयं कोई रास्ता तलाश करेगा, उसको दो सूरतों में से कोई एक सूरत ज़रूर पेश आयेगी; या तो उसको ईश्वर तक पहुंचने का कोई मार्ग मिलेगा ही नहीं या यदि मिला भी तो बहुत फेर का रास्ता होगा। सरल रेखा न होगी बल्कि टेढ़ी-मेढ़ी रेखा होगी। पहली सूरत में तो उसकी तबाही ज़ाहिर है। रही दूसरी सूरत तो उसके भी मूर्खतापूर्ण होने में संदेह नहीं किया जा सकता। एक बुद्धिहीन पशु भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने के लिए टेढी-मेढ़ी रेखा को छोड़ कर सरल रेखा ही को अपनाता है। फिर उस मनुष्य को आप

क्या कहेंगे जिसको अल्लाह का एक नेक बन्दा सीधा मार्ग बतायें और वह कहे कि नहीं मैं तेरे बताये हुए मार्ग पर नहीं चलूंगा, बल्कि स्वयं टेढ़े मार्ग में भटक-भटक कर अन्तिम लक्ष्य की खोज लगा लूंगा।

यह तो वह बात है जो सरसरी सोच-विचार में हर व्यक्ति समझ सकता है, परन्तु यदि आप अधिक सोच-विचार करके देखेंगे तो आप को मालूम होगा कि जो व्यक्ति पैग़म्बर पर ईमान लाने से इन्कार करता है उसको ईश्वर तक पहुंचने का कोई मार्ग नहीं मिल सकता। न टेढ़ा न सीधा। इसका कारण यह है कि जो व्यक्ति सच्चे आदमी की बात मानने से इन्कार करता है, उसके मस्तिष्क में अवश्य कोई ऐसी ख़राबी होगी जिसके कारण वह सच्चाई से मुंह मोड़ता है, या तो उसकी समझ-बूझ में दोष होगा, या उसके मन में अभिमान होगा, या उसके स्वभाव में ऐसी कुटिलता होगी कि वह नेकी और सच्चाई की बातों को मानने पर तैयार ही न होगा, या वह बाप-दादा के अन्धे अनुसरण में ग्रस्त होगा और जो असत्य बातें रीति-रिवाज के रूप में पहले से चली आती हैं, उनके विरुद्ध कोई बात मानने के लिए तैयार न होगा, या वह अपनी इच्छाओं का दास होगा और पैग़म्बर की शिक्षा को मानने से इसलिए इन्कार करेगा कि उसके मान लेने के बाद पापों और अवैध बातों की स्वतंत्रता बाक़ी नहीं रहती। ये सब कारण ऐसे हैं कि यदि इनमें से कोई एक कारण भी किसी व्यक्ति में पाया जाता है तो उसको ईश्वरीय मार्ग मिलना असंभव है और यदि कोई कारण भी न पाया जाता हो तो यह संभव नहीं कि एक सच्चा, निष्पक्ष और भला मनुष्य एक सच्चे पैग़म्बर की शिक्षा को स्वीकार करने से इन्कार कर दे।

सबसे बड़ी बात यह है कि पैग़म्बर ईश्वर की ओर से भेजा हुआ होता है और ईश्वर ही का यह आदेश है कि उस पर 'ईमान'

लाओ और उसका आज्ञापालन करो। अब जो कोई पैग़म्बर पर ईमान नहीं लाता वह ईश्वर के विरुद्ध बग़ावत करता है। देखिए, आप जिस राज्य की प्रजा हैं उसकी ओर से जो अधिकारी भी नियुक्त होगा, आपको उसके आदेशों का पालन करना होगा। यदि आप उसको अधिकारी व्यक्ति मानने से इन्कार करेंगे तो इसका अर्थ यह होगा कि आपने स्वयं राज्य के विरुद्ध बग़ावत की है। राज्य को मानना और उसके द्वारा नियुक्त अधिकारी व्यक्ति को न मानना दोनों सर्वथा परस्पर-विरोधी बातें हैं। ऐसी मिसाल ईश्वर और उसके भेजे हुए पैग़म्बर की भी है। ईश्वर समस्त मनुष्यों का वास्तविक सम्राट है। जिस व्यक्ति को उसने मनुष्य के मार्ग-दर्शन (Guidance) के लिए भेजा हो और जिसके अनुवर्तन की आज्ञा दी हो, हर मनुष्य का कर्तव्य है कि उसको पैग़म्बर माने और दूसरी चीज़ों का अनुकरण छोड़कर केवल उसी के पीछे चले। उससे मुंह मोड़ने वाला प्रत्येक अवस्था में 'काफ़िर' है, भले ही वह ईश्वर को मानता हो या न मानता हो।

पैग़म्बरी का संक्षिप्त इतिहास

अब हम आपको बताते हैं कि मानव-जाति से पैग़म्बरी का सिलसिला किस प्रकार आरम्भ हुआ और किस प्रकार उन्नति करते-करते एक अन्तिम और सबसे बड़े पैग़म्बर पर समाप्त हुआ।

आपने सुना होगा कि ईश्वर ने सबसे पहले एक मनुष्य को पैदा किया था। फिर उसी मनुष्य से उसका जोड़ा पैदा किया और उस जोड़े की नस्ल चलाई जो अनगिनत सदियों में फैलते-फैलते सम्पूर्ण भूतल पर छा गई। संसार में जितने मनुष्य भी पैदा हुए हैं वे सब उसी एक जोड़े की सन्तान हैं। समस्त जातियों के धार्मिक और ऐतिहासिक उल्लेख इससे सहमत हैं कि मानव-जाति का आरम्भ

एक ही इंसान से हुआ है। विज्ञान की खोजों से भी यह सिद्ध नहीं हुआ कि भूमण्डल के विभिन्न भागों में अलग-अलग मनुष्य बनाये गय थे, बल्कि विज्ञान के अधिकतर विशेषज्ञों का भी यही अनुमान है कि पहले एक ही मनुष्य पैदा हुआ होगा। और मनुष्य की वर्तमान नस्ल जहां कहीं पाई जाती है उसी एक व्यक्ति की सन्तान है।[1]

हमारी भाषा में इस पहले मनुष्य को आदम कहते हैं। इसी से 'आदमी' शब्द की उत्पत्ति हुई, जो मानव का समानार्थक है। ईश्वर ने सबसे पहला पैग़म्बर हज़रत आदम ही को बनाया और उन्हें हुक्म दिया कि वे अपनी संतान को इस्लाम की शिक्षा दें अर्थात् उनको यह बतायें कि तुम्हारा और सम्पूर्ण संसार का ईश्वर एक है। उसी की तुम 'इबादत' (उपासना) करो, उसी के आगे सिर झुकाओ, उसी से सहायता के लिए उपासना करो और उसी की इच्छानुसार संसार में भलाई और न्याय के साथ जीवन गुज़ारो। यदि तुम ऐसा करोगे तो तुम्हें अच्छा पुरस्कार मिलेगा और यदि उसके आज्ञापालन से मुंह मोड़ोगे तो बुरी सज़ा पाओगे।

हज़रत आदम की सन्तान में जो लोग अच्छे थे वे अपने पिता के बताये हुए सीधे मार्ग पर चलते रहे, परन्तु जो बुरे लोग थे, उन्होंने उसे छोड़ दिया। किसी ने पेड़ों और पशुओं और नदियों की उपासना आरम्भ कर दी। किसी ने सोचा कि वायु और जल और अग्नि और रोग और स्वास्थ्य और प्रकृति की दूसरी निधियों और

---

१. यह बात कि सारे मनुष्य एक ही मां-बाप की औलाद हैं, जाति-सम्बन्धी भेद-भाव की जड़ काट देती है और सभी लोग परस्पर एक-दूसरे के भाई हो जाते हैं। Emery Revey अपनी किताब The Anatomy of Peace में लिखता है जातीयता की विचार-धारा ने मानव-समाज में एक बिगाड़ पैदा कर दिया है। अतः यह कैसे सम्भव है कि स्वयं जातीयता चाहे अन्तर्जातीयता ही क्यों न हो जाये, इसका हल मालूम कर सके। इस समस्या का हल मानवीय विश्व-व्यापकता में है। — अनुवादक

शक्तियों के ईश्वर अलग-अलग हैं। हर एक की उपासना करनी चाहिए जिससे सब प्रसन्न हो कर हमारे लिए दयालु हो जाएं। इस प्रकार अज्ञान के कारण 'शिर्क' (बहुदेववाद) और मूर्ति-पूजा के बहुत से रूप निकल आये। जिनसे अनेक धर्म पैदा हो गये। यह वह समय था जब कि हज़रत आदम की नस्ल संसार के विभिन्न भागों में फैल चुकी थी। विभिन्न जातियां बन गई थीं। हर जाति ने अपना एक नया धर्म बना लिया था और हर एक के रिवाज अलग-अलग थे। ईश्वर को भूलने के साथ लोग उस क़ानून को भी भूल गये थे जो हज़रत आदम ने अपनी औलाद को सिखाया था। लोगों ने स्वयं अपनी तुच्छ इच्छाओं का पालन करना आरम्भ कर दिया। हर प्रकार बुरे रीति-रिवाजों ने जन्म लिया। हर प्रकार के अज्ञानपूर्ण विचार फैले। अच्छे और बुरे के पहचानने में ग़लतियां की गईं। बहुत-सी बुरी चीज़ें अच्छी समझ ली गईं और बहुत-सी अच्छी चीज़ों को बुरा ठहरा लिया गया।[१]

अब ईश्वर ने हर जाति में पैग़म्बर भेजने शुरू किये जो लोगों को उसी इस्लाम की शिक्षा देने लगे जिसकी शिक्षा सबसे पहले हज़रत आदम ने मनुष्यों को दी थी। इन पैग़म्बरों ने अपनी-अपनी जातियों को भूला हुआ पाठ याद दिलाया। उन्हें एक ईश्वर की

---

१. इससे मालूम हुआ कि यह विचार सही नहीं है कि मनुष्य पहले प्रकृति की विभिन्न चीज़ों का उपासक था और बहुदेववाद से उन्नति कर के वह एक ईश्वर तक पहुंच सका है बल्कि आरम्भ में मनुष्य "तौहीद" (एकेश्वरवाद) का मानने वाला था। "शिर्क" और अनेकेश्वरवाद तो मानव-समाज में उस समय घुसा है जब कि लोगों में बिगाड़ पैदा हुआ है और वे अपने वास्तविक धर्म से दूर हो गये हैं। वर्तमान वैज्ञानिक खोजों से भी इसी बात की पुष्टि होती है कि एक ईश्वर की उपासना ही उपासना का आरम्भिक रूप है। उपासना के दूसरे रूप तो वास्तविक धर्म के बिगड़े हुए रूप हैं। देखिए प्रो० W.Schmidt का लेख "The Origin and Growth of Religions"
—अनुवादक

उपासना की शिक्षा दी। 'शिर्क' (बहुदेववाद) और मूर्ति-पूजा से रोका। अज्ञानपूर्ण प्रथाओं का अंत किया। ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का ढंग बताया और सही क़ानून और नियम बता कर उनके पालन का आदेश दिया। भारत, चीन, ईरान, इराक़, मिस्र, अफ्रीका, यूरोप, तात्पर्य यह कि संसार का कोई देश ऐसा नहीं है जहां ईश्वर की ओर से उसके सच्चे पैग़म्बर न आये हों। इन सबका धर्म एक ही था। और वह यही धर्म था जिसको हम अपनी भाषा में इस्लाम कहते हैं।[१] इतना अवश्य है कि शिक्षा के तरीक़े और जीवन के नियम और क़ानून कुछ भिन्न थे। हर जाति में जिस प्रकार का अज्ञान फैला हुआ था उसी को दूर करने पर अधिक ज़ोर दिया गया। जिस प्रकार के ग़लत विचार प्रचलित थे उन्हीं के सुधार पर अधिक ध्यान दिया गया। सभ्यता और संस्कृति और ज्ञान और बुद्धि की दृष्टि से जब जातियां आरम्भिक स्तर पर थीं तो उनको सरल शिक्षा और सादा धर्म-विधान दिया गया। जैसे-जैसे उन्नति और विकास होता गया, शिक्षा और धर्म-विधान को भी विकसित रूप दिया जाता रहा, परन्तु यह अन्तर केवल बाहरी था, आत्मा सबकी एक थी, अर्थात् विश्वास में 'तौहीद' (एकेश्वरवाद), व्यवहार में भलाई और सदाचार और आख़िरत (परलोक) के दण्ड और पुरस्कार पर विश्वास।

---

१. साधारणतया लोग इस भ्रम में पड़े हैं कि इस्लाम का आरम्भ हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) से हुआ है। यहां तक कि आपको इस्लाम का प्रवर्तक तक कह दिया जाता है। वास्तव में यह एक बहुत बड़ा भ्रम है जिसे अपने मस्तिष्क से पूरी तरह निकाल देना चाहिए। हर व्यक्ति को यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिए कि इस्लाम सनातन से मानव का एकमात्र वास्तविक धर्म है और संसार में जब और जहां भी कोई पैग़म्बर ईश्वर की ओर से आया है वह यही धर्म लेकर आया है।

पैग़म्बरों के साथ भी मनुष्यों ने विचित्र व्यवहार किया, पहले तो उन्हें तकलीफ़ें दी गईं, उनके आदेशों को मानने से इन्कार किया गया। किसी को स्वदेश से निकाला गया, किसी का क़त्ल किया गया। किसी को जीवन भर की शिक्षा और उपदेश के बाद बड़ी कठिनाई से दस-पांच अनयायी प्राप्त हो सके, परन्तु ईश्वर के ये चुने हुए बन्दे बराबर अपना काम किये चले गये। यहां तक कि उनकी शिक्षाओं का प्रभाव पड़ा और बड़ी-बड़ी जातियां उनके सिद्धांतों और क़ानूनों का पालन करने वाली बन गईं। इसके पश्चात् पथ-भ्रष्टता ने दूसरा रूप इख़्तियार किया। पैग़म्बरों के संसार से चले जाने के पश्चात् उनके अनुयायी समुदायों ने शिक्षाओं को बदल डाला। उनके ग्रन्थों में अपनी ओर से हर प्रकार के विचार मिला दिये। पूजा और उपासना की विविध रीतियां अपनाईं, कुछ ने स्वयं पैग़म्बरों को पूजना शुरू कर दिया। किसी ने अपने पैग़म्बर को ईश्वर का अवतार मान लिया (अर्थात् ईश्वर स्वयं मानव के रूप में अवतरित हुआ था)। किसी ने अपने पैग़म्बर को ईश्वर का बेटा कहा। किसी ने अपने पैग़म्बर को ईश-प्रभुत्व में शरीक ठहराया। मतलब यह कि मानव ने अद्भुत अत्याचार की नीति अपनाई कि जिन लोगों ने मूर्तियां का खण्डन किया था, मानव ने स्वयं उन्ही की मूर्तियां बना लीं। फिर जो धर्म-विधान और आचार शास्त्र (शरीअत) ये पैग़म्बर अपने-अपने अनुयायी समुदायों को दे गये थे उनको भी तरह-तरह से बिगाड़ा गया। उनमें हर प्रकार की अज्ञानतापूर्ण प्रथायें शामिल कर दी गईं। कहानियों और झूठी कहावतों को मिला दिया गया। मनुष्य के बनाये हुए क़ानून को उनमें घुला-मिला दिया गया। यहां तक कि कुछ शताब्दियों के पश्चात् यह मालूम करने का कोई ज़रिया ही शेष न रहा कि पैग़म्बर की वास्तविक शिक्षा और वास्तविक

धर्म-शास्त्र (शरीअत) क्या था और बाद के लोगों ने उसमें क्या-क्या मिला दिया।[1] स्वयं पैग़म्बरों के जीवन-वृत्तान्त भी किवदन्तियों में ऐसे खो गये कि उनके बारे में कोई चीज़ भी विश्वास करने योग्य नही रही, फिर भी पैग़म्बरों की कोशिशें सब-की-सब बेकार नहीं हुईं। समस्त मिलावटों के होते हुए भी कुछ-न-कुछ वास्तविक सच्चाई प्रत्येक जाति में बची रह गई। ईश्वर में विश्वास और पारलौकिक जीवन सम्बन्धी विचार किसी-न-किसी रूप में समस्त जातियों में फैल गया। सदाचार और सच्चाई और नैतिक जीवन के कुछ नियम आमतौर से संसार में मान लिये गये। और सभी जातियों के पैग़म्बरों ने अलग-अलग एक-एक जाति को इस हद तक तैयार कर दिया कि संसार में एक ऐसे धर्म की शिक्षा का प्रसार किया जा सके जो बिना किसी भेदभाव के समस्त मानव जाति का धर्म हो।

जैसा कि हमने ऊपर बताया है, आरम्भ में हर जाति में अलग-अलग पैग़म्बर आते थे और उनकी शिक्षाएं उनकी जाति तक ही सीमित रहती थीं। इसका कारण यह था कि उस समय समस्त जातिंयां एक दूसरे से अलग थीं, उनके बीच अधिक मेल-जोल न था। हर जाति अपने देश की सीमा में मानो सीमित

---

१. यहां यह बात अच्छी तरह समझ लेने की है कि पैग़म्बरों के अनुयायियों ने इसी तरह अपने वास्तविक धर्म (अर्थात् इस्लाम) को बिगाड़ कर वे धर्म बनाये हैं जो इस समय विभिन्न नामों से संसार में पाये जाते हैं। उदाहरणतया हज़रत ईसा ने जिस धर्म की शिक्षा दी थी वह तो इस्लाम ही था, परन्तु उनके बाद उनके अनुयायियों ने स्वयं हज़रत ईसा को पूज्य बना लिया और इनकी दी हुई शिक्षा के साथ कुछ दूसरी बातें मिला-जुला कर वह धर्म गढ़ लिया जिसका नाम आज 'ईसाइयत' है।

थी। ऐसी दशा में कोई सामान्य और सम्मिलित शिक्षा का समस्त जातियों में फैलना अत्यन्त कठिन था। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातियों की स्थिति एक दूसरे से एकदम भिन्न थी। अज्ञान अधिक बढ़ा हुआ था। इस अज्ञान के कारण विश्वास और आचार में जो विकार उत्पन्न हुए थे, प्रत्येक स्थान पर विभिन्न प्रकार के थे। इसलिए आवश्यक था कि ईश्वर के पैग़म्बर प्रत्येक जाति को अलग-अलग शिक्षा और उपदेश दें। धीरे-धीरे असत्य विचारों को ख़त्म करके सद्विचारों को फैलायें। धीरे-धीरे अज्ञानपूर्ण रीतियों का उन्मूलन करके उच्चकोटि के क़ानून और नियमों के पालन करने की सीख दें। और इस प्रकार उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करें जिस प्रकार बच्चों के लिए किया जाता है। ईश्वर ही जानता है कि इस तरीक़े से जातियों के शिक्षण में कितने हज़ार वर्ष लगे होंगे। बहरहाल, उन्नति करते-करते अन्त में वह समय आ गया जब मानव-जाति बाल्यावस्था से निकल कर युवावस्था को पहुंचने लगी। व्यापार, कला-कौशल की उन्नति के साथ-साथ जातियों में परस्पर सम्बन्ध क़ायम हो गये। चीन और जापान से लेकर यूरोप और अफ्रीक़ा के सुदूर देशों तक जलीय एवं स्थलीय यात्राओं का आरम्भ हुआ। अधिकतर जातियों में लेखन कला का प्रचार हुआ, विद्या और कला का प्रसार हुआ और विभिन्न जातियों में परस्पर विचार और ज्ञान सम्बन्धी निबन्धों का लेन-देन होने लगा। बड़े-बड़े विजेता पैदा हुए और उन्होंने बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना करके कई-कई देशों और कई-कई जातियों को एक राजनीतिक व्यवस्था से जोड़ दिया। इस प्रकार वह दूरी और जुदाई, जो पहले मानवीय जातियों के बीच पायी जाती थी, धीरे-धीरे कम होती गयी और यह संभव हो गया कि 'इस्लाम' की एक ही शिक्षा और एक धर्म-विधान सम्पूर्ण संसार के लिए भेजा

जाए। अब से ढाई हज़ार वर्ष पहले मानव की अवस्था इस सीमा तक उन्नति कर चुकी थी कि मानो वह स्वयं ही एक सम्मिलित धर्म की मांग कर रहा था। बौद्ध मत यद्यपि कोई पूर्ण धर्म न था और उसमें केवल कुछ नैतिक नियम ही थे परन्तु भारत से निकल कर वह एक ओर जापान और मंगोलिया तक और दूसरी ओर अफ़ग़ानिस्तान और बुख़ारा तक फैल गया। और उसका प्रचार करने वाले दूर-दूर देशों तक जा पहुंचे। इसके कुछ ही शताब्दियों के पश्चात् ईसाई धर्म पैदा हुआ। यद्यपि हज़रत ईसा (उन पर ईश्वर की अपार कृपा हो) 'इस्लाम' की शिक्षा लेकर आये थे, परन्तु उनके पीछे ईसाइयत (Christianity) के नाम से एक ख़राबियों से भरा एवं अधूरा धर्म गढ़ लिया गया। और ईसाइयों ने इस धर्म को अफ्रीक़ा और यूरोप के दूर-दराज़ देशों में फैला दिया। ये घटनाएं बता रही हैं कि उस समय संसार एक सामान्य मानवीय धर्म की मांग कर रहा था और इसके लिए यहां तक तैयार हो गया था कि जब उसे कोई पूर्ण और सत्य धर्म न मिला तो उसने कच्चे और अधूरे धर्मों को ही मानवीय जातियों में फैलाना आरम्भ कर दिया।

हज़रत मुहम्मद सल्ल० की 'नुबूवत'

यह समय था जब सम्पूर्ण संसार और समस्त मानवीय जातियों के लिए एक पैग़म्बर अर्थात् हज़रत मुहम्मद सल्ल० को अरब के भू-भाग में पैदा किया गया और उन्हें इस्लाम की पूरी शिक्षा और पूर्ण विधान और क़ानून देकर इस सेवा-कार्य के लिए नियुक्त किया कि उसे सारी दुनिया में फैला दें।

संसार का भूगोल उठा कर देखिए, आप एक दृष्टि में यह अनुभव कर लेंगे कि सम्पूर्ण संसार की पैग़म्बरी के लिए भूतल पर अरब से अधिक उपयुक्त स्थान और कोई नहीं हो सकता। यह देश

एशिया और अफ़्रीका के ठीक मध्य में स्थित है और यूरोप भी यहां से बहुत क़रीब है। ख़ास तौर से उस युग में यूरोप की सभ्य जातियां अधिकतर यूरोप के दक्षिणी हिस्से में बसी हुई थीं और यह अरब से उतना ही निकट है, जितना भारत है।

फिर उस युग का इतिहास पढ़िये, आपको मालूम होगा कि इस नुबूवत (पैग़म्बरी) के लिए उस युग में अरब जाति से अधिक योग्य कोई जाति न थी। दूसरी बड़ी-बड़ी जातियां अपना ज़ोर दिखा कर मानो बेदम हो चुकी थीं और अरब जाति ताज़ादम थी। सामाजिक उन्नति से दूसरी जातियों का स्वभाव बहुत ज़्यादा बिगड़ चुका था और अरब जाति में उस समय कोई सामाजिक व्यवस्था ऐसी न थी जो उसको सुख भोगी, विलास प्रिय और नीच बना देती। ईसा की छठी शताब्दी के अरब उस समय की उन जातियों की बुराइयों से पूरी तरह बचे हुए थे, जो सभ्य कहलाती थीं। उनमें वे सभी मानवीय गुण पाये जाते थे जो एक ऐसी जाति में हो सकते हैं कि जिसे बनावटी एवं दोषयुक्त सभ्यता की हवा न लगी हो। वे वीर थे, निडर थे, दानशील और उदार थे, अपनी बात पर मज़बूती के साथ जमे रहने वाले थे, स्वतंत्र विचार रखने वाले और स्वतंत्रताप्रिय थे। किसी जाति के दास न थे, अपनी प्रतिष्ठा के लिए प्राण निछावर कर देना उनके लिए सरल था। अत्यन्त सरल जीवन व्यतीत करते थे और भोग-विलास से उनका कोई वास्ता न था। इसमें संदेह नहीं कि उनमें बहुत-सी बुराइयां भी थीं, जैसा कि आगे चलकर आपको मालूम होगा, परन्तु ये बुराइयां इस कारण थीं कि ढाई हज़ार वर्ष से उनके यहां कोई पैग़म्बर न आया था।[1] न ऐसा कोई नेता पैदा हुआ था, जो उनके नैतिक जीवन को सुधारता और

---

१. हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल अ० का समय हज़रत मुहम्मद सल्ल० से ढाई हज़ार वर्ष पहले बीत चुका था। इस लम्बी अवधि में कोई पैग़म्बर (सन्देष्टा) अरब में पैदा नहीं हुआ।

उन्हें सभ्यता की सीख देता। सदियों तक मरुस्थल में आज़ाद जीवन व्यतीत करने के कारण उनमें अज्ञान फैल गया था और वे अपनी अज्ञानता में इतने जकड़े हुए थे कि उनको मनुष्य बनाना किसी साधारण व्यक्ति का काम न था। परन्तु इसके साथ उनमें यह योग्यता अवश्य पाई जाती थी कि यदि कोई असाधारण शक्ति का इंसान उनका सुधार कर दे और उसकी शिक्षा के फलस्वरूप वे किसी उच्च उद्देश्य को लेकर खड़े हों तो दुनिया को बदल कर रख दें। विश्व-सन्देष्टा की शिक्षा को फैलाने के लिए ऐसे ही युवा और शक्तिशाली लोगों की ज़रूरत थी।

इसके बाद अरबी भाषा को देखिए। आप जब इस भाषा को पढ़ेंगे और उसके साहित्य का अध्ययन करेंगे तो आपको मालूम होगा कि उच्च विचारों को व्यक्त करने के लिए और ईश्वरीय ज्ञान की अत्यन्त बारीक बातों के वर्णन के लिए और हृदयों को प्रभावित करने के लिए इससे अधिक उपयुक्त कोई भाषा नहीं है। इस भाषा के संक्षिप्त वाक्यों में बड़े-बड़े विषयों की अभिव्यक्ति हो जाती है और फिर उसमें ऐसा बल होता है कि हृदयों में वाण और नश्तर की भांति अपना काम करते हैं। ऐसा मीठापन होता है कि कानों में रसस्राव-सा होने लगता है। ऐसा संगीत होता है कि मनुष्य मुग्ध हो झूमने लगता है। कुरआन जैसे ग्रंथ के लिए ऐसी ही भाषा की आवश्यकता थी।

अतएव ईश्वर की यह बड़ी ही तत्वदर्शिता थी कि उसने सम्पूर्ण संसार की पैग़म्बरी के लिए अरब देश को चुना। आइए अब हम बतायें कि जिस महान् व्यक्ति को इस काम के लिए पसन्द किया गया वह कैसा अद्वितीय व्यक्ति था।

हज़रत मुहम्मद सल्ल० की नूबूवत के प्रमाण

थोड़ी देर के लिए शारीरिक आंखें बन्द करके कल्पना की

आंखें खोल लीजिए और एक हज़ार चार सौ वर्ष पीछे के संसार को देखिए, यह कैसा संसार था? मनुष्य और मनुष्य के बीच विचार-विनियम के साधन कितने कम थे। देशों और जातियों के बीच सम्बन्ध के साधन कितने सीमित थे, मनुष्य की जानकारी कितनी कम थी, उसके विचार कितने संकीर्ण थे, उस पर भ्रम और असभ्यता कितनी छाई हुई थी, अज्ञान के अंधेरे में ज्ञान का प्रकाश कितना धुंधला था और उस अंधेरे को ढकेल-ढकेल कर कितनी कठिनाइयों के साथ फैल रहा था। संसार में न तार था, न टेलीफोन था, न रेडियो था, न रेल और वायुयान थे, न प्रेस थे और न प्रकाशनगृह थे, न स्कूल और कालेजों की अधिकता थी, न समाचार-पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होती थीं, न पुस्तकें अधिक लिखी जाती थीं, न अधिक उनका प्रकाशन होता था। उस समय के एक विद्वान् व्यक्ति की जानकारी भी कुछ पहलुओं से आधुनिक युग के एक साधारण व्यक्ति की अपेक्षा कम थी। उस समय की ऊंची सोसायटी के व्यक्ति में भी आधुनिक युग के एक मज़दूर की अपेक्षा कम बनाव-संवार था। उस समय का एक उदार विचार रखने वाला व्यक्ति भी आज के क्रूर व्यक्ति से भी अधिक क्रूर था। जो बातें आज हर एक को मालूम हैं उस समय वर्षों के परिश्रम, खोज और छान-बीन के पश्चात् भी कठिनता से मालूम हो सकती थीं। जो जानकारियां आज प्रकाश की तरह वातावरण में फैली हुई हैं और बच्चे को होश संभालते ही प्राप्त हो जाती हैं, उनके लिए उस समय सेकड़ों मील की यात्राएं की जाती थीं और जीवन उनकी खोज में समाप्त हो जाते थे। जिन बातों को आज अन्धविश्वास (Superstition) और गप समझा जाता है वे उस समय की "सच्चाइयां" (Unquestionable truths) थीं। जिन कार्यों को आज अशिष्ट और बर्बरतापूर्ण कहा जाता है वे उस समय के रोज़मर्रा के मामूली काम थे। जिन रीतियों से आज इंसान का दिल

नफ़रत करता है वे उस समय की नैतिकता में केवल उचित ही नहीं समझी जाती थीं बल्कि कोई व्यक्ति यह सोच भी नहीं सकता था कि उनके विरुद्ध भी कोई तरीक़ा हो सकता हैं। मनुष्य की विलक्षणप्रियता इतनी बढ़ी हुई थी कि वह किसी चीज़ में उस समय तक कोई सच्चाई, कोई महानता, कोई पवित्रता मान ही नहीं सकता था जब तक कि वह अप्राकृतिक और अलौकिक न हो, अस्वाभाविक न हो, असाधारण न हो, यहां तक कि मनुष्य स्वयं अपने-आप को इतना हीन समझता था कि किसी मनुष्य का ईश्वर तक पहुंचा हुआ होना और ईश्वर तक किसी पहुंचे हुए व्यक्ति का मनुष्य होना उसकी कल्पना से बाहर की चीज़ थी।

इस अन्धकारमय युग में धरती का एक कोना ऐसा था जहां अन्धकार का बोलबाला और भी अधिक था। जो देश उस समय की सभ्यता की कसौटी के अनुसार सभ्य थे उनके बीच अरब देश सब से अलग-थलग पड़ा हुआ था। उसके पड़ोस में ईरान, रूस और मिस्र देश में विद्या-कला और सभ्यता और संस्कृति का कुछ प्रकाश पाया जाता था परन्तु रेत के बड़े-बड़े समुद्रों ने अरब को उनसे अलग कर रखा था। अरब सौदागार ऊंटों पर महीनों चल कर इन देशों में व्यापार के लिए जाते और केवल माल का लेन-देन करके लौट आते थे। ज्ञान और सभ्यता का कोई प्रकाश उनके साथ न आता था। उनके देश में न कोई पाठशाला थी, न पुस्तकालय, न लोगों में शिक्षा की चर्चा थी, न विद्याओं और कलाओं से कोई लगाव था। सारे देश में गिने-चुने कुछ लोग थे जिनको कुछ लिखना-पढ़ना आता था किन्तु वह भी इतना नहीं कि उस समय की विद्याओं और कलाओं से परिचित होते। उनके पास एक उच्च कोटि की भाषा अवश्य थी जिसमें ऊंचे विचारों को व्यक्त करने की असाधारण शक्ति थी। उनमें उत्तम साहित्यिक अभिरुचि भी पाई जाती थी, परन्तु उनके साहित्य के जो कुछ बचे भाग हम तक पहुंचे

हैं उनको देखने से मालूम होता है कि उनकी जानकारी कितनी सीमित थी, सभ्यता एवं संस्कृति की दृष्टि से वे कितने निम्न श्रेणी में थे, उन पर अन्ध विश्वास कितना छाया हुआ था, उनके विचारों, उनकी धारणाओं और उनके स्वभावों में कितनी अज्ञानता और बर्बरता थी, उनकी नैतिक कल्पनायें कितनी भद्दी थीं।

वहां कोई सुव्यवस्थित शासन न था, कोई ज़ाब्ता, नियम और क़ानून न था। हर कबीला अपनी जगह स्वतंत्र था और केवल ''जंगल के क़ानून'' का पालन किया जाता था। जिसका जिस पर वश चलता उसे मार डालता और उसके धन और संपत्ति पर अधिकार जमा लेता, यह बात एक अरब बद्दू व्यक्ति की समझ से बाहर थी कि जो व्यक्ति उसके कबीले का नहीं है उसे वह क्यों न मार डाले और उसके माल को क्यों न अपने अधिकार में ले ले।

नैतिकता और सभ्यता एवं शिष्टता की जो कुछ भी कल्पनायें उन लोगों में थीं वे बहुत ही गयी-गुज़री और बहुत ही अनगढ़ थीं। पवित्र और अपवित्र, वैध और अवैध, शिष्ट और अशिष्ट की परख से ये करीब-करीब अपरिचित थे। उनका जीवन अत्यन्त मलिन था, उनकी रीतियां और उनके व्यवहार बर्बरतापूर्ण थे। व्यभिचार, जुआ, शराब, चोरी, बटमारी, हिंसा और रक्तपात उनके जीवन के रोज़मर्रा के कार्य थे। वे एक-दूसरे के सामने बिना किसी हिचक के नंगे हो जाते थे। उनकी स्त्रियां तक नंगी होकर 'काबा' का 'तवाफ़' (परिक्रमा) करती थीं। वे अपनी लड़कियों को अपने हाथ से जीवित गाड़ देते थे, केवल इस अज्ञानपूर्ण धारणा के कारण कि कोई उनका दामाद न बने। वे अपने बापों के मरने के बाद अपनी सौतेली माताओं से विवाह कर लेते थे, उन्हें भोजन और वस्त्र एवं सफ़ाई और शुद्धता के साधारण नियमों का भी ज्ञान न था।

धर्म के विषय में वे उन समस्त अज्ञानपूर्ण बातों और गुमराहियों के भागी थे जिनमें उस समय का संसार ग्रस्त था।

मूर्ति-पूजा, प्रेत-पूजा, नक्षत्र-पूजा, तात्पर्य यह कि एक ईश्वर की पूजा के सिवा संसार में जितनी पूजायें पाई जाती थीं वे सब उनमें प्रचलित थी। प्राचीन 'नबियों' (पैग़म्बरों) और उनकी शिक्षाओं के विषय में कोई सच्चा ज्ञान उनके पास न था। वे इतना अवश्य जानते थे कि इब्राहीम और इसमाईल उनके बाप हैं परन्तु यह न जानते थे कि इन दोनों बाप-बेटों का धर्म क्या था? और वे किसकी पूजा करते थे? 'आद' और 'समूद'[१] की कथायें भी उनमें प्रसिद्ध थीं परन्तु उनकी जो कथायें अरब के इतिहासकारों ने लिखी हैं उनको पढ़ जाइए, कहीं आपको सालेह और हूद[२] की शिक्षाओं का चिह्न न मिलेगा। उनको यहूदियों और ईसाइयों के माध्यम से बनी इसराईल[३] की कहानियां भी पहुंची थीं, परन्तु वे जैसी कुछ थीं, उनका अनुमान करने के लिए केवल एक निगाह उन इसराईली परम्परागत कथाओं पर डाल लेनी पर्याप्त है जो कुरआन के मुस्लिम भाष्यकारों ने उद्धृत की हैं। आपको मालूम हो जायेगा कि अरब और स्वयं बनी इसराईल जिन नबियों से परिचित थे वे कैसे मनुष्य थे और 'नुबूवत' (पैग़म्बरी) के बारे में उन लोगों की कल्पना कितनी घटिया दर्जे की थी।

ऐसे समय में और ऐसे देश में एक व्यक्ति जन्म लेता है। बचपन ही में माता-पिता और दादा का साया उसके सिर से उठ जाता है, इसलिए इस गई-गुज़री अवस्था में एक अरब बच्चे को जो थोड़ी-बहुत शिक्षा-दीक्षा मिल सकती थी वह भी उसे नहीं मिलती।

---

१. आद और समूद दो प्राचीन जातियों के नाम हैं। इन जातियों का उल्लेख कुरआन में विभिन्न स्थानों पर हुआ है।

२. हज़रत सालेह और हज़रत हूद ये अल्लाह के पैग़म्बर थे। हज़रत हूद अ० आद जाति को सीधा मार्ग दिखाने के लिए पधारे थे, और हज़रत सालेह अ० समूद जाति के मार्ग-दर्शन के लिए आये थे।

३. एक मुख्य जाति जिसका सम्बन्ध हज़रत याकूब अ० की सन्तान से है।

होश संभालता है तो अरब लड़कों के साथ बकरियां चराने लगता है, जवान होता है तो सौदागरी में लग जाता है। उठना-बैठना, मिलना-जुलना सब-कुछ उन्हीं अरबों के साथ है जिनका हाल ऊपर आपने देख लिया। शिक्षा का नाम तक नहीं, यहां तक कि पढ़ना-लिखना तक नहीं आया, किसी विद्वान् की संगति भी प्राप्त न हुई क्योंकि "विद्वान्" का अस्तित्व उस समय सारे अरब में कहीं न था। उसे अरब से बाहर क़दम निकालने के कुछ अवसर अवश्य प्राप्त हुये परन्तु यह यात्रा केवल सीरिया प्रदेश तक थी, और यह यात्रा वैसी ही व्यापारिक यात्रा थी जैसी उस समय अरब के व्यापारिक काफ़िले किया करते थे। मान लीजिए कि यदि उन यात्राओं के बीच में उसने विद्या और सभ्यता के कुछ चिह्नों का निरीक्षण किया और कुछ विद्वानों से मिलने का अवसर भी प्राप्त हुआ तो स्पष्ट है कि ऐसे जहां-तहां निरीक्षण और ऐसी सामयिक मुलाक़ातों से किसी मनुष्य के चरित्र का निर्माण नहीं हो जाता। इनका प्रभाव किसी व्यक्ति पर इतना प्रबल नहीं हो सकता कि वह अपने वातावरण से सर्वथा स्वतंत्र, सर्वथा विरुद्ध और इतना उच्च हो जाये कि उसमें और उसके वातावरण में कोई सम्पर्क ही न रहे। इनसे ऐसा ज्ञान प्राप्त होना सम्भव नहीं है जो एक अशिक्षित अरब बद्दू को एक देश का नहीं सम्पूर्ण संसार का और एक ज़माने का नहीं समस्त युगों का नेता बना दे। यदि किसी हिस्से में उसने बाहर के लोगों से थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त भी किया हो, तो जो जानकारियां उस समय संसार मे किसी को प्राप्त न थीं, धर्म, नैतिकता, सभ्यता और संस्कृति एवं नागरिकता की जो कल्पनायें और जो सिद्धान्त उस समय संसार में कहीं थे ही नहीं, मानव-चरित्र के भी आदर्श उस समय कहीं नहीं पाये जाते थे उन्हें प्राप्त करने का कोई ज़रिया नहीं हो सकता था।

केवल अरब की नहीं सम्पूर्ण संसार की दशा को दृष्टि में रखिए और देखिए।

यह व्यक्ति जिन लोगों में पैदा हुआ जिनमें बचपन गुज़रा, जिनके साथ पलकर युवावस्था को पहुंचा, जिनसे उसका मेल-जोल रहा, जिनसे उसके मामले रहे, आरम्भ ही से स्वभाव में आचरण में वह उन सब से भिन्न दिखाई देता है, वह कभी झूठ नहीं बोलता, उसकी सच्चाई पर उसकी जाति के सभी लोग गवाही देते हैं। उसके किसी बुरे-से बुरे शत्रु ने भी कभी उस पर यह दोष नहीं लगाया कि वह अमुक अवसर पर झूठ बोला था, वह किसी के साथ दुर्वचनों का प्रयोग नहीं करता। किसी ने उसके मुंह से गाली या कोई अश्लील बात नहीं सुनी। वह लोगों से हर प्रकार के व्यवहार करता है परन्तु कभी किसी से कड़वी बात और तू-तू, मैं-मैं की नौबत ही नहीं आई। उसकी बोली में कटुता और कठोरता की जगह मिठास है और वह भी ऐसी कि जो उससे मिलता है उसी का होकर रह जाता है। वह किसी से दुर्व्यवहार नहीं करता , किसी का हक़ नहीं मारता, वर्षों सौदागरी करने पर भी किसी का एक पैसा भी अवैध रूप से नहीं लेता, जिन लोगों से उसके मामले पेश आते हैं, वे सब उसकी ईमानदारी पर पूर्ण भरोसा रखते हैं। जाति के सभी लोग उसे 'अमीन' (अमानतदार) कहते हैं। दुश्मन तक उसके पास अपने क़ीमती माल रखवाते हैं और वह उनकी भी रक्षा करता है । निर्लज्ज लोगों में वह ऐसा लज्जावान है कि होश संभालने के पश्चात् किसी ने उसको नंगा नहीं देखा। दुराचारियों के बीच वह ऐसा पवित्र आचरण वाला है कि कभी किसी कुकर्म में लिप्त नहीं होता। शराब और जुए को हाथ नहीं लगाता, अशिष्ट लोगों के बीच वह ऐसा सभ्य है कि हर अशिष्टता और गंदगी से नफ़रत करता है और उसके प्रत्येक काम में पवित्रता और स्वच्छता पाई जाती है। कठोर हृदयों के बीच वह ऐसा कोमल हृदय वाला है कि हर एक

के दुःख-दर्द में शरीक होता है, अनाथों और विधवा स्त्रियों की सहायता करता है। यात्रियों की सेवा करता है, किसी को उससे दुःख नहीं पहुंचता और वह दूसरों के लिए स्वयं दुःख उठाता है, बर्बरों के बीच वह ऐसा शांतिप्रिय है कि अपनी जाति के लोगों में बिगाड़ और रक्तपात का बाज़ार देखकर उसको दुःख होता है, अपने क़बीले की लड़ाइयों से दूर रहता हैं और सन्धि और समझौता कराने की कोशिशों में आगे-आगे रहता है। मूर्ति-पूजकों के बीच ऐसी शुद्ध प्रकृति और ठीक बुद्धि वाला है कि धरती और आकाश में कोई चीज़ उसे पूजने योग्य दिखाई नहीं देती। सृष्टि की किसी वस्तु या जीव के आगे उसका सिर नहीं झुकता, मूर्तियों के चढ़ावे का भोज्य-पदार्थ भी ग्रहप नहीं करता, उसका मन स्वयं 'शिर्क' (बहुदेववाद) और सृष्टि-पूजा से घृणा करता है। उस वातावरण में यह व्यक्ति सबसे ऐसा भिन्न दीख पड़ता है जैसे घटा-टोप अंधेरे में एक चराग़ जल रहा है या पत्थरों के ढेर में एक हीरा चमक रहा है।

लगभग चालीस वर्ष तक ऐसा पवित्र, स्वच्छ, और शिष्ट जीवन बिताने के बाद उसके जीवन में एक क्रांति का आरम्भ होता है। वह अन्धकार से घबरा उठता है जो उसे हर ओर से घिरा दिखाई दे रहा था, वह अज्ञान, अनैतिकता, दुराचार, दुर्व्यवस्था, 'शिर्क' के उस भयानक समुद्र से निकल जाना चाहता है जो उसे घेरे हुये हैं। उस वातावरण में कोई चीज़ भी उसको अपनी प्रकृति के अनुकूल दीख नहीं पड़ती। वह सबसे अलग होकर आबादी से दूर पहाड़ों की संगति में जा-जा कर बैठने लगता है। एकान्त और शान्तिपूर्ण वातावरण में कई-कई दिन बिताया करता है। रोज़े रख-रख कर अपनी आत्मा और अपने मन और मस्तिष्क को और अधिक पवित्र और स्वच्छ करता है। सोचता है, सोच-विचार करता है, कोई ऐसा प्रकाश ढूंढ़ता है जिससे वह इस चारों ओर छाये

हुये अन्धकार को दूर कर दे, ऐसी शक्ति प्राप्त करना चाहता है जिससे इस बिगड़ी हुई दुनिया को तोड़-फोड़ कर फिर से संवार दे।

अचानक इस स्थिति में एक महान् परिवर्तन होता है। सहसा उसके हृदय में वह प्रकाश आ जाता है जो पहले से उसमें न था। अचानक उसके भीतर वह शक्ति भर जाती है जिससे वह उस समय तक खाली था। वह गुफा के एकान्त से निकल आता है, अपनी जाति वालों के पास आता है। उनसे कहता है कि ये मूर्तियां जिनके आगे तुम झुकते हो, ये सब बेकार चीज़ें हैं, इन्हें छोड़ दो, कोई मनुष्य, कोई वृक्ष, कोई पत्थर, कोई आत्मा, कोई नक्षत्र इस योग्य नहीं कि तुम उसके आगे सिर झुकाओ और उसकी बन्दगी और पूजा करो और उसका आज्ञापालन और उसके आदेशों का अनुवर्त्तन करो। यह ज़मीन, यह चांद, यह सूर्य, ये नक्षत्र, ये ज़मीन और आसमान की सारी चीजें एक ईश्वर की बनाई हुई हैं। वही तुम्हारा और इन सब का पैदा करने वाला है। वही रोज़ी देने वाला है, वही मारने और जीवित करने वाला है। सब को छोड़कर उसी की बन्दगी करो, सबको छोड़ कर उसी का हुक्म मानो और उसी के आगे सिर झुकाओ। यह चोरी, यह लूट-मार, यह हत्या और रक्तपात, यह अन्याय और अत्याचार, यह कुकर्म जो तुम करते हो, सब पाप हैं, इन्हें छोड़ दो, ईश्वर को ये प्रिय नहीं। सत्य बोलो, न्याय करो, न किसी की जान लो, न किसी का माल छीनो, जो कुछ लो हक़ के साथ लो, जो कुछ दो हक़ के साथ दो। तुम सब मनुष्य हो, मनुष्य और मनुष्य सब बराबर हैं। न कोई नीचता का कलंक लेकर पैदा हुआ और न कोई सम्मान का पदक लेकर दुनिया में आया। बड़ाई और श्रेष्ठता वंश और गोत्र में नहीं, केवल ईश-उपासना और सदाचार और पवित्रता में है। जो ईश्वर से डरता है, नेक और शुद्ध है, वही उत्तम श्रेणी का मनुष्य है, और जो

ऐसा नहीं वह कुछ भी नहीं। मरने के बाद तुम सब को अपने ईश्वर के पास उपस्थित होना है। तुममें से प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के लिए ईश्वर के सामने उत्तरदायी है, उस ईश्वर के सामने जो सब-कुछ देखता और जानता है, तुम कोई चीज़ उससे नहीं छिपा सकते। तुम्हारे जीवन का कर्म-पत्र उसके सामने बिना किसी कमी-बेशी के पेश होगा और उसी कर्म-पत्र के अनुसार वह तुम्हारे परिणाम का फ़ैसला करेगा। उस सच्चे न्यायी के यहां न कोई सिफ़ारिश काम आयेगी और न रिश्वत चलेगी, न किसी का वंश पूछा जायेगा। वहां केवल ईमान और अच्छे कर्मों की पूछ होगी। जिसके पास यह सामग्री होगी, वह 'जन्नत' (स्वर्ण) में प्रवेश पायेगा और जिसके पास इनमें से कुछ भी न होगा वह विफल मनोरथ नरक में डाला जायेगा।

यह था वह सन्देश जिसे लेकर वह गुफा से निकला।

जाहिल जाति वाले उसके दुश्मन हो जाते हैं, गालियां देते हैं, पत्थर मारते हैं, एक दिन दो दिन नहीं इकट्ठे तेरह वर्ष तक उस पर घोरतम अत्याचार करते हैं। यहां तक कि उसे जन्म-भूमि से निकाल बाहर करते हैं और फिर निकालने पर भी दम नहीं लेते, जहां जाकर वह शरण लेता है वहां भी उसे हर तरह सताते हैं। सारे अरब को उसके ख़िलाफ़ उभारते हैं और पूरे आठ वर्ष तक उसके विरुद्ध लड़ाई ठाने रहते हैं। वह इन सब तकलीफ़ों को सहता है परन्तु अपनी बात से नहीं टलता।

ये उसकी जाति के लोग शत्रु क्यों हो गये? क्या धन और धरती का कोई झगड़ा था? क्या ख़ून का कोई दावा था? क्या वह उनसे दुनिया की कोई चीज़ भी मांग रहा था? नहीं, सारी शत्रुता केवल इस बात के लिए थी कि वह एक ईश्वर की बन्दगी, संयम और शुभकर्म की शिक्षा क्यों देता है? मूर्ति-पूजा और 'शिर्क'

(बहुदेववाद) और दुष्कर्म के ख़िलाफ़ प्रचार क्यों करता है? पुजारियों और पुरोहितों की पेशवाई पर चोट क्यों लगाता है। सरदारों की सरदारी के पाखण्ड को क्यों तोड़ता है? मनुष्य और मनुष्य के बीच से ऊंच-नीच का भेद क्यों मिटाना चाहता है? गोत्र और वंश सम्बन्धी पक्षपात को अज्ञान क्यों ठहराता है? पुराने ज़माने से समाज की जो व्यवस्था चली आ रही है, उसे क्यों तोड़ना चाहता है? उसकी जाति वाले कहते थे कि ये बातें जो तू कह रहा है, ये सब बाप-दादों की रीति और जातीय संस्कार के विरुद्ध हैं। तू इनको छोड़ दे नहीं तो हम तेरा जीवित रहना दुर्लभ कर देंगे।

अच्छा तो इस व्यक्ति ने ये तकलीफ़ें क्यों उठाईं? जाति वाले उसे अपना सम्राट बना लेने के लिए तैयार थे। धन के ढेर उसके चरणों में डालने के लिए तैयार थे। शर्त यह थी कि वह अपनी इस शिक्षा को छोड़ दे, परन्तु उसने इन सबको ठुकरा दिया और अपनी शिक्षा के लिए पत्थर खाना और ज़ुल्म सहना स्वीकार कर लिया। यह आख़िर क्यों? क्या लोगों के ईश्वरवादी और सदाचारी बन जाने में उसका कोई व्यक्तिगत लाभ था? क्या कोई ऐसा लाभ था जिसके मुक़ाबले में राज्य और सरदारी एवं धन और सुख के सारे लोभ का कोई महत्व न था? क्या कोई ऐसा लाभ था जिसके लिए एक मनुष्य कठिन-से-कठिन शारीरिक और मानसिक यातनाओं में ग्रस्त रहना और पूरे इक्कीस वर्ष तक ग्रस्त रहना भी स्वीकार कर सकता हो? विचार कीजिए, क्या सहृदयता, त्याग और मानव जाति के प्रति सहानुभूति के इससे भी ऊंचे किसी दर्जे की कल्पना आप कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति अपने लाभ के लिए नहीं, दूसरों के भले के लिए तकलीफ़ें उठाये? जिनकी भलाई और कल्याण के लिए वह कोशिश करता है, वही उसको पत्थर मारें, गालियां दें, घर से बेघर कर दें और प्रदेश में भी उसका पीछा न छोड़ें और इन सब बातों पर भी वह उनका भला चाहने से बाज़ न आये?

फिर देखिये! क्या कोई झूठा व्यक्ति किसी निर्मूल बात के पीछे ऐसे दुःखों को सहन कर सकता है? क्या कोई तीर-तुक्के लड़ाने वाला व्यक्ति अटकल और अनुमान से कोई बात कह कर उस पर इतना जम सकता है कि मुसीबतों के पहाड़ उस पर टूट जायें, ज़मीन उस पर तंग कर दी जाये, पूरा देश उसके ख़िलाफ़ खड़ा हो, बड़ी-बड़ी सेनायें उस पर उमड़ कर आयें, परन्तु वह अपनी बात से तिल भर हटने को तैयार न हो? यह दृढ़ता यह संकल्प, यह जमाव स्वयं गवाह है कि उसको अपनी सच्चाई पर विश्वास और पूर्ण विश्वास था। यदि उसके मन में ज़रा भी संदेह होता तो वह निरन्तर इक्कीस वर्ष तक संकटों और कष्टों के लगातार तूफ़ानों के मुक़ाबले में कभी न ठहर सकता।

यह तो उस व्यक्ति में आई हुई क्रान्ति का एक पहलू था। दूसरा पहलू इससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक है।

चालीस वर्ष की आयु तक वह एक अरब था। साधारण अरबों की तरह। इस बीच में किसी ने इस सौदागर को एक भाषण-कर्त्ता, एक ऐसे भाषणकर्त्ता के रूप में न जाना जिसका भाषण जादू का-सा असर रखता हो। किसी ने उसको ज्ञान, बुद्धिमत्ता और तत्वदर्शिता (Wisdom) की बातें करते न सुना। किसी ने उसको आध्यात्म और नैतिक दर्शन और क़ानून और राजनीति, अर्थ और समाज सम्बन्धी समस्याओं पर बातचीत करते हुए न देखा। किसी ने उससे ईश्वर और फ़िरिश्तों और आसमानी किताबों और पिछले नबियों (पैग़म्बरों) और प्राचीन जातियों, 'क़ियामत' (प्रलय) और जीवन-मृत्यु के पश्चात् और 'दोज़ख' (नरक) और 'जन्नत' (स्वर्ग) के बारे में एक शब्द भी नहीं सुना। उसे पवित्र आचरण, शिष्ट व्यवहार और उत्तम चरित्र तो अवश्य प्राप्त था परन्तु चालीस वर्ष की उम्र को पहुंचने तक उसमें कोई असाधारण बात न पाई गई

जिससे लोगों को आशा होती कि यह व्यक्ति अब कुछ बनने वाला है। उस समय तक जानने वाले उसको केवल एक मौन, शान्तिप्रिय और अति सज्जन व्यक्ति के रूप में जानते थे किन्तु चालीस वर्ष के पश्चात् जब वह अपनी गुफा से एक नया सन्देश लेकर निकला तो पूर्णतः उसकी काया ही पलटी हुई थी।

अब वह एक आश्चर्यजनक 'कलाम' सुना रहा था, जिसको सुन कर सारा अरब आश्चर्यचकित हो गया। उस कलाम के प्रभाव की तीव्रता का यह हाल था कि उसके कट्टर दुशमन भी उसको सुनते हुए डरते थे कि कहीं यह दिल में न उतर जाये। कलाम की सरसता और उत्तमता और वर्णन-शक्ति का यह हाल था कि समस्त अरब जाति को जिसको बड़े-बड़े कवि, 'भाषणकर्ता' वाक्चातुर्य के दावेदार मौजूद थे, उसने चुनौती दी और बार-बार चुनौती दी कि तुम सब मिलकर एक 'सूरः'[1] इस जैसी लाओ, परन्तु कोई उसके मुक़ाबले का साहस न कर सका, ऐसी अनुपम वाणी कभी अरब के कानों ने सुनी ही न थी।

अब अचानक वह अपूर्व तत्वदर्शी और दार्शनिक, नैतिकता, सभ्यता और संस्कृति का एक अद्वितीय सुधारक, एक आश्चर्यजनक राजनीतिज्ञ, एक महान् क़ानून का विशेषज्ञ, एक उच्च श्रेणी का जज, एक अद्वितीय सेनापति बनकर प्रकट हुआ। उस अशिक्षित, मरुस्थलवासी ने तत्वदर्शिता (Wisdom) और बुद्धिमत्ता की ऐसी बातें कहनी शुरू कर दीं जो न इससे पहले किसी ने कही थीं न इसके बाद कोई कह सका। वह अशिक्षित व्यक्ति अध्यात्म और ब्रह्म-ज्ञान के महान् प्रसंगों पर निश्चयात्मक भाषण देने लगा। जातियों के इतिहास से जातियों के उत्थान-पतन के मूल सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने लगा। प्राचीन सुधारकों के कार्यों पर समालोचना

---

१. कुरआन का एक अध्याय।

करने लगा और संसार के धर्मों के सत्य और असत्य तत्वों पर अपने विचार प्रकट करने लगा और विभिन्न जातियों के पारस्परिक विभेदों के विषय में निर्णय करने लगा, नैतिकता और सभ्यता और शिष्टता की शिक्षा देने लगा।

वह सामाजिक और आर्थिक और सामूहिक मामलों और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विषय में नियम और क़ानून बनाने लग गया और ऐसे क़ानून बनाये कि बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान, सोच-विचार और जीवन भर के अनुभवों के बाद कठिनाई से उनमें अन्तर्निहित तत्वदर्शिता (Wisdom) को समझ सकते हैं, और सांसारिक अनुभव जितने बढ़ते जाते हैं उनका रहस्य और अधिक खुलता जाता है।

वह मौनधारी शान्तिप्रिय सौदागर जिसने जीवन में कभी तलवार न चलाई थी, कभी कोई सैनिक शिक्षा-दीक्षा न प्राप्त की थी, यहां तक कि जो जीवन में केवल एक बार एक लड़ाई में केवल दर्शक के रूप में सम्मिलित हुआ था, देखते-देखते वह एक ऐसा वीर योद्धा बन गया जिसका पांव कठिन-से-कठिन युद्धों में भी अपने स्थान से एक इंच न हटा। ऐसा महान् सेनापति बन गया जिसने नौ वर्ष के भीतर समस्त अरब देश को पराजित कर लिया। ऐसा अद्भुत मिलेट्री लीडर बन गया कि उसकी पैदा की हुई सेना की-व्यवस्था और युद्ध-प्रवृत्ति के प्रभाव से सामग्रीविहीन अरबों ने कुछ ही वर्षों में संसार की दो महान् सैन्य शक्तियों (रोम और ईरान) को उलट कर रख दिया।

यह अलग-थलग रहने वाला शान्ति-प्रिय व्यक्ति जिसमें किसी ने चालीस वर्ष तक राजनीतिक रुचि की गन्ध भी न पाई थी, अचानक इतना बड़ा सुधारक और नीतिज्ञ बन कर प्रकट हुआ कि २३-वर्ष में उसने १२ लाख वर्ग मील में फैले हुए मरुस्थल के असंगठित, लड़ाकू, अज्ञान, उद्दण्ड, असभ्य और सदा आपस में

लड़ने वाले क़बीलों को रेल, रेडियो और प्रेस की सहायता के बिना एक धर्म, एक सभ्यता, एक विधान और एक शासन-व्यवस्था के अधीन बना दिया। उसने उनकी भावनाएं बदल दीं, उनके स्वभाव बदल दिये, उनके आचरण बदल दिये, उनकी अशिष्टता को उच्च श्रेणी की शिष्टता में, उनकी बर्बरता को उत्तम नागरिकता में, उनकी कुचरित्रता और अनैतिकता को सुचरित्रता, ईश-भक्ति, संयम और श्रेष्ठ नैतिकता में, उनकी उद्दण्डता और निरंकुशता को अत्यन्त नियमबद्धता और आज्ञापालन में परिवर्तित कर दिया। उस बांझ जाति को जिसकी गोद में शताब्दियों से किसी एक भी चर्चा योग्य व्यक्ति ने जन्म न लिया था, उसने पुरुषोत्पादक बनाया कि उसमें हज़ार-दो-हज़ार महान् मानव उठ खड़े हुए और संसार को धर्म, नैतिकता और सभ्यता का पाठ पढ़ाने के लिए संसार में चारों ओर फैल गये।

और यह काम उसने अत्याचार, बल, धोखा और छल से नहीं किया बल्कि मनमोह लेने वाले स्वभाव, आत्माओं को काबू में कर लेने वाली सज्जनता और मस्तिष्कों पर अधिकार जमा लेने वाली शिक्षा से कियां। उसने अपने स्वभाव से शत्रुओं को मित्र बनाया, दया और अनुकम्पा से दिलों को मोम किया। न्याय और इन्साफ़ के साथ हुकूमत की। हक़ और सच्चाई से कभी तिल भर न हटा। युद्ध में भी किसी के साथ विश्वासघात नहीं किया और न प्रतिज्ञा भंग की। अपने बुरे-से-बुरे शत्रुओं पर भी अत्याचार नहीं किया, जो उसके ख़ून के प्यासे थे, जिन्होंने उसको पत्थर मारे थे, उसको वतन से निकाला था, उसके विरुद्ध समस्त अरब को खड़ा कर दिया था, यहां तक कि जिन्होंने दुश्मनी के जोश में उसके चचा का कलेजा तक निकाल कर चबा डाला था, उनको उसने जीतकर क्षमा कर दिया। अपने लिए कभी उसने किसी से बदला नहीं लिया।

इन सब बातों के साथ उसके आत्मसंयम बल्कि निःस्वार्थता का यह हाल था कि जब वह देश भर का शासक हो गया उस समय भी वह जैसा फ़कीर पहले था वैसा ही फ़कीर रहा। फूस के छप्पर में रहता था, चटाई पर सोता था, मोटा-झोटा पहनता था, निर्धनों जैसा भोजन करता था, उपवास तक कर जाता था, रात-रात भर अपने ईश्वर की उपासना में खड़ा रहता था। ग़रीबों और मुसीबत के मारों की सेवा करता था। एक मज़दूर की तरह काम करने में भी उसे संकोच न होता था। अन्तिम समय तक उसमें राजकीय दम्भ और अमीरी की शान और बड़े आदमियों के से अहंकार की तनिक सी गन्ध भी न पैदा हुई। वह एक साधारण व्यक्ति की तरह लोगों से मिलता था। उनके दुःख-दर्द में शरीक होता था। जनता के बीच इस तरह बैठता था कि अजनबी व्यक्ति के लिए यह जानना कठिन होता था कि इस सभा में जाति का नायक, देश का शासक कौन है। इतना महान् व्यक्ति होने पर भी छोटे-से-छोटे आदमी के साथ भी ऐसा व्यवहार करता था कि मानो वह उसी जैसा एक मनुष्य है। जीवन भर के कठिन परिश्रम और प्रयत्न में उसने अपने लिए कुछ भी न छोड़ा। अपना पूरा तरका अपने समुदाय को प्रदान कर दिया। अपने अनुयायियों पर अपनी औलाद के लिए कुछ भी हक़ न रखे, यहां तक कि अपनी औलाद को 'ज़कात' लेने के हक़ से भी वंचित कर दिया केवल इस भय से कि कहीं आगे चलकर उसकी औलाद ही को सारी 'ज़कात' देने लग जायें।

अभी इस महान् व्यक्ति के चमत्कार समाप्त नहीं हुए। उस की महानता का ठीक-ठीक अनुमान करने के लिए आप को संसार पर सामूहिक रूप से एक नज़र डालनी चाहिए। आप देखेंगे कि अरब मरुभूमि का यह अपढ़ मरुभूमि-निवासी जो चौदह सौ वर्ष पहले उस अन्धकारमय युग में पैदा हुआ था वास्तव में नये युग का निर्माता और सम्पूर्ण संसार का नेता है, वह केवल उनका ही लीडर

नहीं है जो उसे लीडर मानते हैं, बल्कि उनका भी लीडर है जो उसे नहीं मानते। उसको इस बात की जानकारी तक नहीं है कि जिसके विरुद्ध वे मुख खोलते हैं उसका मार्ग-दर्शन किस प्रकार उनके विचारों और भावनाओं में, उनके जीवन-सिद्धान्तों और कर्म के नियमों में और उनके आधुनिक युग की आत्मा में विलीन हो गया है।

यही व्यक्ति है जिसने संसार की कल्पनाओं और धारणाओं की धारा को भ्रम, अन्धविश्वास और विलक्षणप्रियता और वैराग्य (Monasticism) की ओर से हटा कर बुद्धिवाद और यथार्थप्रियता और संयम-युक्त गृहस्थ और पुण्य सांसारिक जीवन की ओर फेर दिया। उसी ने आंखों से दीख पड़ने वाले चमत्कार मांगने वाले संसार में बौद्धिक चमत्कारों को समझने और उन्हीं को सच्चाई की कसौटी मानने की अभिरुचि पैदा की। उसी ने प्रकृति-विरुद्ध चीज़ों में ईश्वर के ईश्वरत्व के चिह्न ढूंढ़ने वालों की आंखें खोलीं और उन्हें प्रकृति के दृश्यों (Natural phenomena) में ईश्वर के चिह्न देखने का आदी बनाया। उसी ने ख्याली घोड़े दौड़ाने वालों को अटकलबाज़ी(Speculation) से हटा कर बुद्धि, विचार, निरीक्षण और खोज के रास्ते पर लगाया। उसी ने बुद्धि, अनुभव और अन्तर्ज्ञान की विशिष्ट सीमायें मनुष्य को बताईं। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के बीच तालमेल पैदा किया। धर्म से ज्ञान और कर्म का और ज्ञान और कर्म से कर्म का सम्पर्क स्थापित किया। धर्म की शक्ति से संसार में साइण्टिफिक स्पिरिट (Scientific spirit) और साइण्टिफिक स्पिरिट से शुद्ध धर्मवाद पैदा किया, उसी ने 'शिर्क' (बहुदेववाद) और सृष्टि-पूजा की नींव को उखाड़ा और ज्ञान की शक्ति से 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का विश्वास ऐसी मज़बूती के साथ स्थापित किया कि मुश्रिकों (अनेकेश्वरवादियों) और मूर्ति

पूजने वालों के धर्म भी एकेश्वरवाद का रंग ग्रहण करने पर विवश हो गये, उसी ने नैतिकता और आध्यात्मिकता की मौलिक कल्पनाओं को बदला। जो लोग वैराग्य और इच्छा दमन को विशुद्ध नैतिकता समझते थे, जिनकी दृष्टि में मन और शरीर का हक़ अदा करने और सांसारिक जीवन के मामलों में भाग लेने के साथ आध्यात्मिक उन्नति और मुक्ति संभव ही न थी, उनको उसी ने नागरिकता और समाज और सांसारिक कर्म के बीच नैतिकता की श्रेष्ठता और आध्यात्मिक विकास और मुक्ति की प्राप्ति का मार्ग दिखाया। फिर वही है जिसने मनुष्य को उसके वास्तविक मूल्य का ज्ञान कराया। जो लोग भगवान् और अवतार और ईश्वर के बेटे के सिवा किसी को मार्ग-दर्शक और नेता मानने को तैयार न थे, उनको उसी ने बताया कि मनुष्य और तुम्हारे ही जैसा मनुष्य स्वर्ग-राज्य का प्रतिनिधि और ईश्वर का 'ख़लीफ़ा' (Vicergent) हो सकता है। जो लोग हर शक्तिशाली मनुष्य को अपना ईश्वर बना लेते थे उनको उसी ने समझाया कि मनुष्य सिवाय मनुष्य के और कुछ नहीं है, न कोई व्यक्ति पवित्रता, शासन और पतित्व का जन्म सिद्ध हक़ लेकर आया है और न किसी पर अपवित्रता, पराधीनता और दासता का पैदायशी दाग़ लगा हुआ है। इसी शिक्षा ने संसार में मानव एकता और समानता और जनतंत्र और स्वाधीनता के विचार उत्पन्न किये हैं।

कल्पनाओं से आगे बढ़िए, आपको इस अशिक्षित व्यक्ति की लीडरशिप के व्यावहारिक फल संसार के क़ानूनों और तरीक़ों और मामलों में इस अधिकता से दीख पड़ेंगे कि उनकी गणना कठिन हो जायेगी। नैतिकता और सभ्यता, शिष्टता और स्वच्छता और पवित्रता के कितने ही नियम हैं जो उस की शिक्षा से निकल कर समस्त संसार में फैल गये। सामाजिकता के जो नियम उसने बनाये थे उनसे संसार ने कितना लाभ उठाया और अब तक उठाये जा रहा

है। अर्थनीति के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों की उसने शिक्षा दी उनसे संसार में कितने आन्दोलनों ने जन्म लिया और अब तक जन्म लेते जा रहे हैं। शासन के जो तरीक़े उसने अपनाये थे, उनसे संसार के राजनीतिक दृष्टिकोण में कितनी क्रान्ति हुई और हो रही है, न्याय और क़ानून के जो सिद्धान्त उसने बनाये थे उन्होंने संसार के अदालती व्यवस्थाओं और क़ानून सम्बन्धी विचारों को कितना प्रभावित किया और अब तक उनका असर लगातर मौन रूप से हो रहा है। युद्ध और सन्धि और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सभ्यता जिस व्यक्ति ने संसार में स्थापित की वह वास्तव में यही अरब का अशिक्षित व्यक्ति है, नहीं तो पहले संसार इसे न जानता था कि युद्ध की भी कोई सभ्यता हो सकती है और विभिन्न जातियों में सम्मिलित मानव (Common humanity) के आधार पर भी मामलों का होना सम्भव है।

मानव-इतिहास पृष्ठ में इस विस्मयकारी व्यक्ति का उच्च और महान् व्यक्तित्व इतना उभरा हुआ दिखाई देता है कि आरम्भ से लेकर अब तक बड़े-बड़े ऐतिहासिक मनुष्य जिनकी गणना संसार महान् व्यक्तियों (Heroes) में करता है, जब उस के मुक़ाबले में लाये जाते हैं, तो उसके आगे बौने जैसे दीख पड़ते हैं। संसार के महान् व्यक्तियों में से कोई भी ऐसा नहीं है जिसकी पूर्णता की चमक-दमक मानव-जीवन के एक-दो विभागों से आगे बढ़ सकी हो। कोई धारणाओं और सिद्धान्तों का सम्राट है, परन्तु उसे व्यावहारिक शक्ति प्राप्त नहीं। कोई कर्म का पुतला है, परन्तु सोच-विचार में कमज़ोर है, किसी के चमत्कार राजनीति तक सीमित हैं, कोई केवल सैन्य सूझ-बूझ का प्रतीक है, किसी की नज़र सामाजिक जीवन के एक पहलू पर इतनी अधिक गहरी जमी है कि दूसरे पहलू ओझल हो गए हैं। किसी ने नैतिकता और

आध्यात्मिकता को लिया, तो आर्थिक और राजनीतिक विषय को भुला दिया, किसी ने आर्थिक और राजनीतिक विषय को लिया तो उसने नैतिकता और आध्यात्मिकता की उपेक्षा की। सारांश यह कि इतिहास में हर ओर एक रुखे हीरो (Heroes) ही दिखाई देते हैं, परन्तु अकेला एक ही व्यक्तित्व ऐसा है जिसमें समस्त गुण एकत्र हैं, वह स्वयं ही दार्शनिक और तत्वदर्शी भी है और स्वयं ही अपने दर्शन को व्यावहारिक जीवन में उतारने वाला भी, वह राजनीतिज्ञ भी है, सेनानायक भी है, कानून बनाने वाला भी है, नैतिकता की शिक्षा देने वाला भी है, धार्मिक और आध्यात्मिक नेता भी है। उसकी निगाह मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन पर फैलती है, और छोटी-से-छोटी चीज़ों तक जाती है। खाने-पीने के नियम और शरीर को स्वच्छ रखने के तरीकों से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तक एक-एक चीज़ के विषय में वह आदेश देता है, अपनी धारणाओं के अनुसार एक स्थायी सभ्यता (Civilization) का निर्माण करता है और जीवन के समस्त विभिन्न पहलुओं में ऐसा वास्तविक सन्तुलन (Equilibrium) स्थापित करता है कि अधिकता और अपूर्णता एवं न्यूनता का कहीं नामोनिशान तक दिखाई नहीं देता। क्या कोई दूसरा व्यक्ति ऐसे व्यापक गुणों वाला आपकी नज़र में है?

संसार के बड़े-बड़े ऐतिहासिक व्यक्तियों में से कोई एक ऐसा नहीं, जो थोड़ा या बहुत अपने वातावरण का पैदा किया हुआ न हो। परन्तु इस व्यक्ति की शान निराली है। उसके बनाने में उसके वातावरण का कोई भाग दिखाई नहीं देता, और किसी प्रमाण से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि अरब का वातावरण उस समय ऐतिहासिक रूप में एक ऐसे व्यक्ति के जन्म की मांग करता था। बहुत खींच-तान कर आप जो कुछ कह सकते हैं वह इससे ज़्यादा कुछ न होगा कि ऐतिहासिक कारण अरब में एक ऐसे लीडर के

सामने आने की मांग कर रहे थे जो क़बायली अव्यवस्था और विभिन्नता को मिटा कर एक जाति, और एक राष्ट्र बनाता, और देशों को पराजित करके अरबों की आर्थिक भलाई की सामग्री जुटाता – अर्थात् एक राष्ट्रवादी नेता (National Leader) जो उस समय की समस्त अरबी विशेषताओं से परिपूर्ण होता, अन्याय, निर्दयता, रक्तपात, धोखा, छल-कपट आदि हर संभव युक्ति से अपनी जाति को सम्पन्न और सुखी बनाता और एक साम्राज्य का निर्माण करके अपने उत्तराधिकारियों के लिए छोड़ जाता। इसके सिवा उस समय के अरबी इतिहास की कोई मांग आप साबित नहीं कर सकते। हीगल (Hegel) के ऐतिहासिक दर्शन या मार्क्स (Marx) की की हुई इतिहास की भौतिक व्याख्या के दृष्टिकोण से आप ज़्यादा-से-ज़्यादा यही कह सकते हैं कि उस समय उस वातावरण में एक राष्ट्र और एक साम्राज्य बनाने वाला पैदा होना चाहिए था, या पैदा हो सकता था। परन्तु हीगली या मार्क्सी दर्शन (Hegelian or Marxian Philosophy) इस घटना की क्या व्याख्या करेगा कि उस समय उस माहौल में ऐसा व्यक्ति पैदा हुआ जो उत्तम नैतिक शिक्षा देने वाला, मानवता को संवारने वाला और आत्माओं को शुद्ध करके उन्हें विकसित करने वाला और अज्ञान के अन्धविश्वासों और पक्षपातों को मिटाने वाला था। जिसकी निगाह जाति, वंश और देश की सीमाओं को तोड़ कर पूरी मानवता पर फैल गई। जिसने अपनी जाति के लिए नहीं बल्कि मानव-लोक के लिए एक नैतिक एवं आध्यात्मिक और सांस्कृतिक एवं राजनीतिक व्यवस्था की बुनियाद डाली, जिसने आर्थिक मामलों और नागरिक राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को कल्पना-लोक में नहीं बल्कि वास्तविक संसार में नैतिक आधारों पर स्थापित करके दिखाया और आध्यात्मिकता और भौतिकता का ऐसा नपा-तुला और सन्तुलित समावेश किया जो आज भी ज्ञान, तत्व-दर्शिता और

बुद्धि की वैसी ही प्रधान कृति है जैसी उस समय थी। क्या ऐसे व्यक्ति को आप अरब अज्ञान के वातावरण की उपज कह सकते हैं?

यही नहीं कि वह व्यक्ति अपने वातावरण की पैदावार नहीं दीख पड़ता, बल्कि जब हम उसकी कीर्ति पर विचार करते हैं तो मालूम होता है कि वह काल और स्थान के बन्धनों से परे है। उसकी दृष्टि समय और स्थान के बन्धनों को तोड़ती हुई, शताब्दियों और हज़ारों वर्षों (Millenniums) के परदों को चीरती हुई आगे बढ़ती है। वह मनुष्य को हर युग और हर वातावरण में देखता है और उसके जीवन के लिए ऐसे नैतिक और व्यावहारिक आदेश देता है जो हर अवस्था में समान अनुकूलता के साथ ठीक बैठता है। वह उन लोगों में से नहीं है जिनको इतिहास ने पुराना कर दिया है, जिनकी प्रशंसा हम केवल इस हैसियत से कर सकते हैं कि वे अपने समय के अच्छे नेता थे, सबसे अलग और सबसे भिन्न वह मानवता का ऐसा मार्ग-दर्शक है जो इतिहास के साथ प्रगति (March) करता है और युग में वैसा ही आधुनिक (Modern) दीख पड़ता है जैसा उससे पहले युग के लिए था।

आप जिन लोगों को बड़ी उदारता के साथ "इतिहास बनाने वाले" (Makers of History) की उपाधि देते हैं, वे वास्तव में इतिहास के बनाये हुए (Creatures of History) हैं, सच पूछिए तो इतिहास बनाने वाला पूरे मानव इतिहास में केवल यही एक व्यक्ति है। संसार के जितने लीडर इतिहास में क्रान्ति ला चुके हैं उनके वृत्तान्तों पर विवेचनात्मक दृष्टि डालिये, आप देखेंगे हर ऐसी स्थिति में पहले से क्रान्ति के कारण उत्पन्न हो रहे थे, और वे कारण स्वयं ही उस क्रान्ति की दिशा और मार्ग भी निश्चित कर रहे थे जिसके आने की वे मांग कर रहे थे। क्रान्तिकारी नेता ने केवल इतना किया कि परिस्थितियों की मांग को शक्ति से कार्यरूप में लाने के लिए उस अभिनेता का पार्ट अदा किर दिया जिसके लिए स्टेज

और कर्म दोनो पहले से निश्चित हों, परन्तु इतिहास बनाने वालों या क्रान्ति लाने वालों के पूरे समूह में यह अकेला ऐसा व्यक्ति है कि जहां क्रान्ति के कारण नहीं पाये जाते थे वहां उसने स्वयं कारण की सृष्टि की, जहां क्रान्ति की सामग्री न थी वहां उसने स्वयं सामग्री तैयार की, जहां उस क्रान्ति की (Spirit) और व्यावहारिक योग्यता लोगों में नहीं पाई जाती थी वहां उसने स्वयं अपने अद्देश्य के अनुसार आदमी तैयार किये, अपने महान् और प्रबल व्यक्तित्व को पिघला कर हज़ारों मनुष्यों की काया में उतार दिया और उनको वैसा बनाया जैसा वह बनाना चाहता था। उसके बल और संकल्प-शक्ति ने खुद ही क्रान्ति की सामग्री जुटाई, स्वयं ही उसका आकार-प्रकार निश्चित किया और स्वयं ही अपने संकल्प के बल से वक़्त की रफ़्तार को मोड़ कर उस रास्ते पर चलाया, जिस पर वह उसे चलाना चाहता था, इस शान का इतिहास बनाने वाला और ऐसा महान् क्रान्तिकारी व्यक्ति आपको और कहां दिखाई देता है।

X X X X

आइए अब इस प्रश्न पर विचार कीजिए कि चौदह सौ वर्ष पहले के अन्धकारमय संसार में, अरब जैसे घोर अन्धकारमय देश के एक कोने में एक चरवाही और सौदागरी करने वाले अशिक्षित मरुस्थलवासी व्यक्ति के अन्तर में सहसा इतना ज्ञान, इतना प्रकाश, इतना बल, इतना चमत्कार, इतन प्रबल और पूर्ण शक्तियां उत्पन्न होने का कौन-सा साधन था? आप कहते हैं कि ये सब उसके अपने मन और मस्तिष्क की उपज थी। मैं कहता हूं कि यदि यह उसी के मन और मस्तिष्क की पैदावार थी तो उसको अपने ईश्वर होने का दावा करना चाहिए था। और यदि वह ऐसा दावा करता तो वह संसार जिसने राम को ईश्वर बना डाला, जिसने कृष्ण को भगवान कहने में संकोच न किया, जिसने बुद्ध को स्वयं पूज्य

बना लिया, जिसने मसीह को स्वयं अपनी इच्छा से खुदा का बेटा मान लिया, जिसने आग, पानी और हवा तक को पूज डाला, वह ऐसे महान् कीर्तिमान व्यक्ति को खुदा मान लेने से कभी इन्कार न करता, परन्तु देखिए, वह स्वयं क्या कह रहा है। वह अपने चमत्कारों और कीर्तियों में से एक का क्रेडिट भी स्वयं नहीं लेता। कहता है: 'मैं एक मनुष्य हूं, तुम्हीं जैसा मनुष्य, मेरे पास कुछ भी अपना नहीं, सब-कुछ ईश्वर का है और ईश्वर की ओर से है। यह 'कलाम' जिसके समान कोई 'कलाम' पेश करने में समस्त मानव-जाति असमर्थ है, मेरा कलाम नहीं है, मेरे मस्तिष्क की योग्यता का फल नहीं है, इसका शब्द-शब्द ईश्वर की ओर से मेरे पास आया है और इसकी प्रशंसा ईश्वर ही के लिए है। ये कार्य जो मैंने किये, ये क़ानून जो मैंने बनाये, ये सिद्धान्त जो मैंने तुम्हें सिखाये, इनमें से कोई चीज़ भी मैंने स्वयं नहीं गढ़ी है, मैं कुछ भी अपनी योग्यता से पेश करने का सामर्थ्य नहीं रखता। हर-हर चीज़ में ईश्वर के मार्ग-दर्शन (Divine Guidance) का मुहताज हूं, उधर से जो संकेत होता है वही करता हूं और वही कहता हूं।

देखिए, यह कैसी आश्चर्यजनक सच्चाई है, कैसी अमानतदारी और सत्यवादिता है। झूठा व्यक्ति तो बड़ा बनने के लिए दूसरों की ऐसी कीर्तियों का क्रेडिट भी ले लेने में संकोच नहीं करता जिनके बारे में आसानी से मालूम किया जा सकता है कि वे कहां से ली गई हैं, लेकिन यह व्यक्ति उन कीर्तियों का सम्बन्ध भी अपने साथ नहीं जोड़ता जिनको यदि वह अपनी कीर्ति कहता तो कोई उसे झूठा नहीं कह सकता था, क्योंकि किसी के पास उनके वास्तविक उद्गम तक पहुंचने का साधन ही नहीं। सच्चाई का इससे ज़्यादा स्पष्ट सबूत और क्या हो सकता है? उस व्यक्ति से अधिक सच्चा और कौन होगा जिसको एक अत्यंत गुप्त साधन द्वारा ऐसे अनुपम चमत्कार

प्राप्त हों और वह बिना किसी संकोच के बता दे कि उसे ये चमत्कार कहां से प्राप्त हुये हैं? बताइए किस कारण से हम उसे सच्चा न कहें?

देखिए, ये हैं हमारे नायक, सम्पूर्ण संसार के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद सल्ल०। उनकी पैग़म्बरी का प्रमाण खुद उनकी सच्चाई है। उनके महान् कार्य, उनका स्वभाव, उनके पवित्र जीवन की घटनायें, सब इतिहासों से सिद्ध हैं। जो व्यक्ति शुद्ध-हृदयता, सत्य-प्रियता और न्याय के साथ उनको पढ़ेगा उसका दिल कह उठेगा कि वे ईश्वर के पैग़म्बर हैं। वह 'कलाम' जो उन्होंने पेश किया वह यही कुरआन है, जिसे आप पढ़ते हैं। इस अनुपम ग्रंथ को जो व्यक्ति भी खुले दिल से पढ़ेगा, उसे मानना पड़ेगा कि यह ग्रन्थ अवश्य ईश्वरीय ग्रन्थ है। कोई मनुष्य ऐसे ग्रन्थ की रचना नहीं कर सकता।

नुबूवत की समाप्ति

अब आपको जानना चाहिए कि इस समय इस्लाम का सीधा-सच्चा मार्ग मालूम करने का कोई साधन हज़रत मुहम्मद सल्ल० की शिक्षा और कुरआन मजीद के सिवा नहीं है। मुहम्मद सल्ल० समस्त मानव जाति के पैग़म्बर हैं। उन पर पैग़म्बरी का सिलसिला समाप्त कर दिया गया।[१] ईश्वर मनुष्य के मार्ग-दर्शन का जितना इन्तिज़ाम करना चाहता था वह उसने अपने अन्तिम पैग़म्बर के जरिये कर दिया। अब जो व्यक्ति सत्य का इच्छुक हो और ईश्वर का मुस्लिम (आज्ञाकारी) बन्दा बनना चाहता हो, उसके लिए आवश्यक है कि ईश्वर के इस आख़िरी पैग़म्बर पर ईमान लाये। जो कुछ शिक्षा उन्होंने दी है उसको माने और जो तरीक़ा उन्होंने बताया है उस पर चले।

---

१. दे० कुरआन सूरः ३३ आयत ४०।

नुबूवत की समाप्ति के प्रमाण

पैग़म्बरी की वास्तविकता हमने आपको ऊपर बता दी है। उसको समझने और उस पर विचार करने से आपको स्वयं मालूम हो जायेगा कि पैग़म्बर प्रतिदिन पैदा नहीं होते, न यह आवश्यक है कि प्रत्येक जाति के लिए हर समय एक पैग़म्बर हो। पैग़म्बर का जीवन वास्तव में उसकी शिक्षा और मार्ग-दर्शन का जीवन है। जब तक उसकी शिक्षा और मार्ग-दर्शन जीवित है उस समय तक मानो वह स्वयं ज़िन्दा है। पिछले पैग़म्बर इस हैसियत से जीवित नहीं, क्योंकि जो शिक्षा उन्होंने दी थी दुनिया ने उसको बदल डाला। जो ग्रन्थ वे लाये थे उन में से एक भी आज अपने वास्तविक रूप में मौजूद नहीं। स्वयं उसके मानने वाले भी यह दावा नहीं कर सकते कि हमारे पास हमारे पैग़म्बरों के दिये हुए मूल ग्रन्थ मौजूद हैं। उन्होंने अपने पैग़म्बरों के जीवन-चरित्र को भी भुला दिया। पिछले पैग़म्बरों में से एक की भी सही और प्रमाणित जीवन गाथा आज कहीं नहीं मिलती। यह भी विश्वासपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे किस युग में पैदा हुए? कहां पैदा हुए? क्या काम उन्होंने किये? किस प्रकार जीवन बिताया? किन बातों की शिक्षा दी? और किन बातों से रोका? यही उनकी मौत है। इस हैसियत से वे जीवित नहीं, परन्तु मुहम्मद (सल्ल०) जीवित हैं, क्योंकि उनकी शिक्षा और मार्ग-दर्शन जीवित है। जो कुरआन उन्होंने दिया था वह अपने मूल शब्दों में मौजूद है। उसमें एक अक्षर, एक बिन्दु, एक मात्रा का भी अन्तर नहीं हुआ। उनकी जीवन-चर्या, उनके वचन, उनके कार्य सब-के-सब सुरक्षित हैं और तेरह सौ वर्ष से अधिक समय बीत जाने के पश्चात् भी इतिहास में उनका चित्र ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है कि मानो हम स्वयं आपको देख रहे हैं। संसार के किसी व्यक्ति का जीवन भी उतना सुरक्षित नहीं जितना आपका जीवन सुरक्षित है।

हम अपने जीवन के हर मामले में हर समय आपके जीवन से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। यही इस बात का प्रमाण है कि आपके पश्चात् किसी दूसरे पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं।

एक पैग़म्बर के पश्चात् दूसरा पैग़म्बर आने के तीन कारण हो सकते हैं।

(१) या तो पहले पैग़म्बर की शिक्षा और मार्ग-दर्शन मिट गया हो, और उसे फिर प्रस्तुत करने की ज़रूरत हो।

(२) या पहले पैग़म्बर की शिक्षा पूरी न हो, और उसमें संशोधन या कुछ बढ़ाने की आवश्यकता हो।

(३) या पहले पैग़म्बर की शिक्षा एक विशेष जाति तक सीमित हो, और दूसरी जाति या जातियों के लिए दूसरे पैग़म्बर की आवश्यकता हो।[1]

ये तीनों कारण अब शेष नहीं रहे।

(१) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की शिक्षा और मार्ग-दर्शन जीवित है। और वे साधन पूर्णतया सुरक्षित हैं जिनसे हर समय यह मालूम किया जा सकता है कि आपका 'दीन' (धर्म) क्या था? कौन-सा मार्ग-दर्शन और आदेश लेकर आप आये थे? जीवन के किस तरीक़े को आपने प्रचलित किया? और किन तरीक़ों को आपने मिटाने और बन्द करने की कोशिश की? अतः जब आपकी शिक्षा और मार्ग-दर्शन मिटा ही नहीं, तो उसको नये सिरे से पेश करने के लिए किसी नबी के आने की आवश्यकता नहीं।

---

१. एक चौथा कारण यह भी हो सकता है कि पैग़म्बर की मौजूदगी में उसकी सहायता के लिए दूसरा पैग़म्बर भेजा जाये, परन्तु हमने इसका उल्लेख इसलिए नहीं किया कि कुरआन में इसकी केवल दो मिसालों का उल्लेख हुआ है और इन अपवाद मिसालों से यह नतीजा नहीं निकलता कि सहायक पैग़म्बर भेजने का कोई सामान्य नियम अल्लाह के यहां है।

(२) हज़रत मुहम्मद सल्ल० के द्वारा संसार को इस्लाम की पूर्ण शिक्षा दी जा चुकी है। अब न इसमें कुछ घटाने की आवश्यकता है और न कोई ऐसी कमी बाक़ी रह गई है जिसको पूरा करने के लिए किसी नबी के आने की ज़रूरत हो। अतः दूसरा कारण भी दूर हो गया।

(३) हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) किसी विशेष जाति के लिए नहीं बल्कि समूचे विश्व के लिए नबी (पैग़म्बर) बना कर भेजे गये हैं और सारे मनुष्यों के लिए आपकी शिक्षा पर्याप्त है। अतः अब किसी विशेष जाति के लिए अलग किसी नबी के आने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार तीसरा कारण भी दूर हो गया।

इसीलिए हज़रत मुहम्मद सल्ल० को "ख़ातमुन्नबीयीन" (नबियों के समापक) कहा गया है, अर्थात् 'नुबूवत' के सिलसिले को समाप्त कर देने वाला। अब संसार को किसी दूसरे नबी की ज़रूरत नहीं है, बल्कि केवल ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के तरीक़े पर स्वयं चलें और दूसरों को चलायें। आपकी शिक्षाओं को समझें और उन्हें व्यवहार में लायें और संसार में उस क़ानून और सिद्धान्त का राज्य स्थापित करें जिसे लेकर आप आये थे।[१]

---

१. कुछ लोगों को यह सन्देह होता है कि इस्लाम ने मानव-जीवन के लिए जो क़ानून और नियम दिये हैं वे समय और समय की बदलती हुई परिस्थितियों में कैसे हमारा साथ दे सकते हैं? हर युग के लिए नवीन क़ानून और ज़ाब्ता ही उचित होता है। यह और इस तरह की बातें साधारणतया यों ही बिना गहरे सोच-विचार के कह दी जाती हैं। इस सिलसिले में यदि कुछ मौलिक बातें सामने रहें तो मन में इस तरह का कोई सन्देह उत्पन्न नहीं हो सकता:

(१) 'इस्लाम' ईश्वर का उतारा हुआ धर्म है। ईश्वर का ज्ञान पूर्ण है। उसे समय के आदि और अन्त सब का ज्ञान है। वह जानता है कि मानव को किन परिस्थितियों का सामना करना होगा?

(फुटनोट का शेष अगले पेज पर)

(पिछले फुटनोट का शेष)

(२) इस्लाम के सिद्धान्त और नियम वास्तव में मानव-प्रकृति पर निर्भर हैं। समय के परिवर्तन से मानव-प्रकृति में परिवर्तन नहीं आता।

(३) यह बात समझ लेने की है कि जीवन के मौलिक सिद्धान्तों और मौलिक मान्यताओं (Values) में अन्तर नहीं आता। समय की प्रगति और परिवर्तन से समाज और जीवन के केवल बाहरी रूप (Outward form) में परिवर्तन आ सकता है, जीवन के मौलिक और स्थायी तत्त्वों में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस्लाम ने मानव-जीवन के लिए जो सिद्धान्त और नियम दिये हैं वे ऐसे हैं जो सदैव काम आने वाले हैं। मनुष्य 'इजतिहाद' के द्वारा अर्थात् अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर उन्हें किसी भी युग और किसी भी विकसित या अविकसित समाज में लागू (Apply) कर सकता है। इस्लाम के दिये मौलिक सिद्धान्त और उसकी निश्चित की हुई जीवन की मौलिक मान्यतायें उसे हमेशा सीधे और सच्चे मार्ग की ओर ले जायेंगी। इस्लाम मनुष्य की सूझ-बूझ का आदर करता है। मनुष्य के मानसिक विकास के लिए यह ज़रूरी भी था कि मनुष्य को अपनी सूझ-बूझ से काम लेने का अवसर मिलता रहे। मनुष्य अपनी सूझ-बूझ से काम लेकर ईश्वर के उतारे हुए प्रकाश में प्रत्येक युग और समाज में अपने लिए मार्ग निकाल सकता है।

—अनुवादक

चौथा अध्याय

विस्तृत ईमान

आगे बढ़ने से पहले आपको एक बार फिर उन जानकारियों का जायज़ा ले लेना चाहिए जो आपको पिछले अध्यायों में प्राप्त हुई हैं।

(१) यद्यपि इस्लाम का अर्थ केवल अल्लाह का आज्ञापालन है, परन्तु ईश्वर की सत्ता, गुण और उसकी इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का तरीक़ा और 'आख़िरत' (परलोक) के दण्ड और पुरस्कार का यथार्थ ज्ञान केवल ईश्वर के पैग़म्बर ही के द्वारा प्राप्त हो सकता है, इसलिए इस्लाम धर्म की वास्तविक परिभाषा यह हुई कि पैग़म्बर की शिक्षा पर ईमान लाना और उसके बताये हुए तरीक़े पर अल्लाह की बन्दगी करना 'इस्लाम' है। जो व्यक्ति पैग़म्बर के रास्ते को छोड़कर सीधे ईश्वर के आज्ञापालन और उसके आदेशों के पालन करने का दावा करे वह 'मुस्लिम' नहीं है।

(२) प्राचीन काल में अलग-अलग जातियों के लिए अलग-अलग पैग़म्बर आये थे और एक ही जाति में एक के बाद दूसरे कई पैग़म्बर आया करते थे। उस समय हर जाति के लिए 'इस्लाम' उस धर्म का नाम था जो ख़ास उसी जाति के पैग़म्बर या पैग़म्बरों ने सिखाया, यद्यपि इस्लाम की वास्तविकता हर देश में और हर युग में एक ही थी; परन्तु धर्म-विधान (शरीअतें) अर्थात् 'क़ानून' और 'इबादत' (उपासना) के तरीक़े कुछ भिन्न थे।

इसलिए एक जाति के लिए दूसरी जाति के पैग़म्बरों का अनुसरण ज़रूरी न था, यद्यपि 'ईमान' सब पर लाना ज़रूरी था।

(३) हज़रत मुहम्मद सल्ल० जब पैग़म्बर बना कर भेज गए, तो आपके द्वारा इस्लाम की शिक्षा को पूर्ण कर दिया गया और सम्पूर्ण संसार के लिए एक ही धर्म-विधान (शरीअत) भेजा गया। आपकी 'नुबूवत' (पैग़म्बरी) किसी विशेष जाति या देश के लिए नहीं, बल्कि आदम की समस्त सन्तान के लिए है और हमेशा के लिए है। 'इस्लाम' के जो धर्म-विधान (शरीअतें) पिछले पैग़म्बरों ने प्रस्तुत किये थे, वे सब हजरत मुहम्मद सल्ल० के आने के पश्चात् मंसूख़ (निरस्त) कर दिये गये और अब क़ियामत तक न कोई नबी (पैग़म्बर) आने वाला है, और न कोई दूसरा धर्म-विधान (शरीअतें) ईश्वर की ओर से उतरने वाला है। अतः अब 'इस्लाम' केवल हज़रत सल्ल० के अनुसरण का नाम है। आपकी नुबूवत (पैग़म्बरी) को मानना और आपने विश्वास पर उन सब बातों को मानना जिन पर ईमान लाने की आपने शिक्षा दी है और आपके समस्त आदेशों को ईश्वरीय आदेश समझ कर उनका पालन करना 'इस्लाम' है। अब कोई और ऐसा व्यक्ति ईश्वर की ओर से आने वाला नहीं है जिसको मानना मुस्लिम (ईश्वर का आज्ञाकारी) होने के लिए आवश्यक हो और जिसे न मानने से मनुष्य 'काफ़िर' हो जाता हो।

आइए अब हम आपको बतायें कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने किन-किन बातों पर 'ईमान' लाने की शिक्षा दी है, वे कैसी सच्ची बातें हैं और उनको मानने से मनुष्य का पद कितना ऊंचा हो जाता है।

अल्लाह पर ईमान

हज़रत मुहम्मद सल्ल० की सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण शिक्षा यह है: 'ला इलाह इल्लल्लाह'। अल्लाह के सिवा

कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं।

यह 'कलमा' (उक्ति) इस्लाम की बुनियाद है। जो चीज़ मुस्लिम को एक 'क़ाफ़िर', एक मुश्रिक (अनेकेश्वरवादी) और एक नास्तिक (Atheist) से अलग करती है वह यही है। इसी 'कलमे' के मानने और न मानने से मनुष्य और मनुष्य के बीच बड़ा अन्तर हो जाता है। इसको मानने वाले एक समुदाय (Community) बन जाते हैं और न मानने वाले दूसरा गिरोह। इसके मानने वालों के लिए संसार से लेकर 'आख़िरत' (परलोक) तक उन्नति, सफलता और प्रतिष्ठा है और न मानने वालों के लिए नैराश्य, अपमान और तिरस्कार।

इतना बड़ा अन्तर जो मनुष्य और मनुष्य के बीच हो जाता है, वह केवल थोड़े से शब्दों के उच्चारण का नतीजा नहीं है। मुंह से यदि आप दस लाख बार 'कुनैन, कुनैन' पुकारते रहें और खायें नहीं, तो आपका ज्वर कदापि न उतरेगा। इसी प्रकार यदि मुख से 'ला इलाह इल्लल्लाह' कह दिया, परन्तु यह न समझे कि इसका क्या अर्थ है और इन शब्दों का उच्चारण करके आपने कितनी बड़ी चीज़ को मान लिया है और इसके मानने से आप पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी आ गई है, तो ऐसा बेसमझी का उच्चारण कुछ भी लाभदायक नहीं। वास्तव में अन्तर तो उस समय होगा जब "ला इलाह इल्लल्लाह" का अर्थ आपके दिल में उतर जाये, उसके अर्थ पर आपको पूर्ण विश्वास हो जाये। उसके विरुद्ध जितने भी विचार और धारणायें हैं वे सब आपके दिल से निकल जायें और इस 'कलमे' का प्रभाव आपके मन और मस्तिष्क पर कम-से-कम इतना गहरा हो जितना कि इस बात का प्रभाव है कि आग जलाने वाली चीज़ है और ज़हर मार डालने वाली चीज़। अर्थात् जिस प्रकार आग की विशेषता पर 'ईमान' आपको चूल्हे में हाथ डालने से

रोकता है और ज़हर की विशेषता पर 'ईमान' आपको ज़हर खाने से बचाता है, उसी प्रकार 'ला इलाह इल्लल्लाह' पर 'ईमान' आपको 'शिर्क' (बहुदेववाद) और 'कुफ़्र' (अधर्म) और नास्तिकता की हर छोटी-से-छोटी बात से भी रोक दे, चाहे वह विश्वास सम्बन्धी हो या व्यवहार सम्बन्धी।

'ला इलाह इल्लल्लाह' का अर्थ

सबसे पहले यह समझिए कि 'इलाह' किसे कहते हैं। अरबी भाषा में 'इलाह' का अर्थ है 'इबादत' के योग्य, अर्थात् वह सत्ता जो अपनी महिमा, और तेज और उच्चता की दृष्टि से इस योग्य हो कि उस की पूजा की जाये और बन्दगी और 'इबादत' में उसके आगे सिर झुका दिया जाये। ''इलाह'' के अर्थ में यह भाव भी शामिल है कि वह अपार सामर्थ्य और शक्ति का अधिकारी है जिसके विस्तार को समझने में मानवबुद्धि चकित रह जाये। 'इलाह' के अर्थ में यह बात भी शामिल है कि वह स्वयं किसी का मुहताज और आश्रित न हो और सब अपने जीवन-सम्बन्धी मामलों में उसके आश्रित और उससे सहायता मांगने के लिए मजबूर हों। ''इलाह'' शब्द में छिपे होने का भाव भी पाया जाता है, अर्थात् 'इलाह' उसको कहेंगे जिस की शक्तियां रहस्यमय हों। फारसी भाषा में ''ख़ुदा'' और हिन्दी में ''देवता'' और अंग्रेज़ी में ''गाड'' का अर्थ भी इससे मिलता जुलता है और संसार की अन्य भाषाओं में इस अर्थ के लिए विशेष शब्द पाये जाते हैं।[१]

''अल्लाह'' शब्द वास्तव में ईश्वर की व्यक्तिवाचक संज्ञा है। ''ला इलाह इल्लल्लाह'' का शाब्दिक-अर्थ यह होगा कि कोई

---

१. मिसाल के तौर पर ग्रीक में इसके लिए डेओस (Deo's) शब्द आता है। लेटिन में डेऊस (Deus), गोथिक (Gothic) में गुथ (Guth), डैनिश में (Danish) गुड (Gud), जर्मन में गाट (Gott) —अनुवादक

'इलाह' नहीं है सिवाय उस विशेष सत्ता के जिसका नाम अल्लाह है। मतलब यह है कि सारे विश्व में अल्लाह के सिवा कोई एक सत्ता भी ऐसी नहीं जो पूजने योग्य हो। उसके सिवा कोई इसका हक़ नहीं रखता कि 'इबादत', उपासना और बन्दगी और आज्ञापालन में उसके आगे सिर झुकाया जाये। केवल वही एक सत्ता समूचे विश्व की मालिक और हाकिम है। सब चीज़ें उसकी मुहताज हैं, सब उसी की सहायता पाने पर मजबूर हैं। उसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा सम्भव नहीं और उस की सत्ता और व्यक्तित्व को समझने में बुद्धि दंग है।

'ला इलाह इल्लल्लाह' की वास्तविकता

यह तो केवल शब्दों का अर्थ था, अब इसकी हक़ीक़त को समझने की कोशिश कीजिए।

मानव के प्राचीन-से-प्राचीन इतिहास के जो वृत्तान्त हम तक पहुंचे हैं और प्राचीन-से-प्राचीन जातियों के जो भग्नावशेष और चिन्ह देखे गये हैं, उनसे मालूम होता है मनुष्य ने हर युग में किसी न किसी को 'ईश' माना है और किसी-न-किसी की 'इबादत' (उपासना) अवश्य की है। अब भी संसार में जितनी जातियां हैं, चाहे वे नितान्त बर्बर हों या पूरी तरह असभ्य, उन सब में यह बात पाई जाती है कि वे किसी को ईश्वर मानती हैं और उसकी 'इबादत' करती हैं। इससे मालूम हुआ कि मानव-स्वभाव में ईश्वर का ख़याल बैठा हुआ है, उसके अन्तर में कोई ऐसी चीज़ है जो उसे मजबूर करती है कि किसी को ईश्वर माने और उसकी उपासना (इबादत) करे।

प्रश्न उभरता है कि वह क्या चीज़ है? आप स्वयं अपने अस्तित्व पर और समस्त मनुष्यों की दशा को देख कर इस प्रश्न का उत्तर मालूम कर सकते हैं।

मनुष्य वास्तव में बन्दा (दास, सेवक, उपासक) ही पैदा हुआ है। वह स्वभावतः आश्रित और मुहताज है, निर्बल है, निर्धन है। अनगिनत चीज़ें हैं जो उसके अस्तित्व को स्थिर रखने के लिए आवश्यक हैं, परन्तु उन पर उसे अधिकार प्राप्त नहीं है, आप-से-आप वे उसे मिलती भी हैं और उससे छिन भी जाती हैं।

बहुत-सी चीज़ें हैं जो उसके लिए लाभदायक हैं। वह उन को प्राप्त करना चाहता है, परन्तु कभी यह उसको मिल जाती हैं और कभी नहीं मिलतीं, क्योंकि उनको प्राप्त करना बिल्कुल उसके वश में नहीं है।

बहुत-सी चीज़ें हैं जो उसको हानि पहुंचाती हैं। उसके जीवन भर के परिश्रम को पल भर में नष्ट कर देती हैं। उसकी कामनाओं को मिट्टी में मिला देती हैं। उसको बीमार करती और तबाही में डालती हैं। वह उनको दूर करना चाहता है कभी वे दूर हो जाती हैं और कभी नहीं होतीं। इससे वह जान लेता है कि उनका आना और न आना, दूर होना या न होना उसके वश में नहीं है।

बहुत-सी चीज़ें हैं जिनकी शान-शौकत और बड़ाई को देख कर वह आतंकित हो जाता है। पहाड़ों को देखता है, नदियों को देखता है। बड़े-बड़े भयंकर और हिंसक जानवरों को देखता है। हवाओं के झकोर और तूफ़ान और पानी की बाढ़ और भूकम्प को देखता है, बादलों का गरजना और घटाओं की कालिमा और बिजली की कड़क, चमक और मूसलाधार बारिश के दृश्य उसके सामने आते हैं। सूर्य, चन्द्र और तारे उसे गतिशील दिखाई देते हैं। वह देखता है कि सब चीज़ें कितनी बड़ी, कितनी शक्तिशाली, कितनी विराट और भव्य हैं और उनकी अपेक्षा वह स्वयं कितना निर्बल और तुच्छ है।

ये विभिन्न दृश्य और स्वयं अपनी विशेषताओं की विभिन्न

स्थितियों को देखकर उसके मन में आप-से-आप अपनी बन्दगी (दासता), पराश्रय और दुर्बलता महसूस होती है और जब यह अनुभूति होती है, तो इसके साथ ही स्वयं ईश्वर की कल्पना भी उभर आती है। वह उन हाथों का ख़याल करता है जो इतनी बड़ी शक्तियों के मालिक हैं। उनकी बड़ाई का एहसास उसे विवश करता है कि वह उनकी 'इबादत' में सिर झुका दे। उनकी शक्ति का आभास उसे विवश करता है कि वह उनके आगे अपनी दीनता प्रस्तुत करे। उनकी लाभ पहुंचाने वाली शक्तियों की अनुभूति उसे विवश करती है कि वह उनके आगे परेशानी दूर करने के लिए हाथ फैलाये और उनकी हानि पहुंचाने वाली शक्तियों की अनुभूति उसे विवश करती है कि वह उनसे डरे और उनके प्रकोप से बचे।

अज्ञान की निम्नतम अवस्था में मनुष्य यह समझता है कि जो चीज़ें उसको भव्य और शक्ति वाली दीख पड़ती हैं या किसी तरह लाभ या हानि पहुंचाती हुई प्रतीत होती हैं, यही ईश्वर है, इसीलिए वह जानवरों और नदियों और पहाड़ों को पूजता है। पृथ्वी की पूजा करता है। अग्नि और वर्षा और वायु, चन्द्रमा और सूर्य की पूजा करने लगता है।

यह अज्ञान जब कुछ कम होता है और कुछ ज्ञान का प्रकाश आता है तो उसे ज्ञात होता है कि ये सब चीज़ें तो स्वयं उसी की तरह मुहताज और कमज़ोर हैं। बड़े-से-बड़ा जानवर भी एक अदना मच्छर की भांति मरता है। बड़ी-से-बड़ी नदियां शुष्क हो जाती हैं और चढ़ती उतरती रहती हैं। पहाड़ों को स्वयं मनुष्य तोड़ता-फोड़ता है। भूमि का फलना-फूलना स्वयं भूमि के अपने अधिकार में नहीं। जब पानी उसका साथ नहीं देता तो वह सूख जाती है। पानी भी विवश है। उसका आना हवा पर निर्भर करता है। हवा को भी अपने पर अधिकार प्राप्त नहीं। उसका उपयोगी

या अनुपयोगी होना दूसरे कारणों के अधीन है। चन्द्रमा और सूर्य और तारे भी किसी नियम के अधीन हैं। उस नियम के विरुद्ध वे ज़रा भी हिल नहीं सकते। अब उसका ध्यान गुप्त और रहस्यमय शक्तियों की ओर जाता है। वह सोचता है कि इन प्रत्यक्ष चीज़ों के पीछे कुछ गुप्त शक्तियां हैं जो इन पर शासन कर रही हैं और सब कुछ उन ही के अधिकार में है। यहीं से अनेक ईश और देवताओं की कल्पना का उदय होता है। प्रकाश और हवा और पानी और रोग, और स्वास्थ्य और विभिन्न दूसरी चीज़ों के ईश्वर अलग-अलग मान लिये जाते हैं और उनको काल्पनिक रूप देकर उनकी पूजा की जाती है।

इसके बाद जब और अधिक ज्ञान का प्रकाश आता है, तो मनुष्य देखता है कि संसार के प्रबन्ध और व्यवस्था में एक अटल नियम और एक बड़े ज़ाब्ते की पाबन्दी पाई जाती है। हवाओं के वेग, वर्षा के आगमन, ग्रहों की गति, ऋतुओं के परिवर्तन में कैसी नियमबद्धता पाई जाती है? किस प्रकार असंख्य शक्तियां एक-दूसरे के साथ मिलकर काम कर रही हैं? कैसा अटल नियम है जो समय जिस काम के लिए निश्चित कर दिया गया है, ठीक उसी समय पर विश्व के समस्त साधन एकत्र हो जाते हैं और कार्यों को पूरा करने हेतु एक-दूसरे को अपना योगदान देते हैं? विश्व-व्यवस्था का यह तालमेल देखकर 'मुश्रिक' (बहुदेववादी) व्यक्ति यह मानने के लिए मजबूर हो जाता है कि एक बड़ा ईश्वर भी है जो इन समस्त छोटे-छोटे ईश्वरों पर शासन कर रहा है, अन्यथा यदि सब एक–दूसरे से अलग और बिल्कुल स्वतंत्र हों तो संसार की पूरी-की-पूरी व्यवस्था बिगड़ कर रह जाये। वह इस बड़े ईश्वर को "अल्लाह" और परमेश्वर और "खुदा-ए-खुदायगां" (ईश्वरों का ईश्वर) आदि नामों से संबोधित करता है, परन्तु 'इबादत' और पूजा में उसके साथ छोटे ईश्वरों को भी शरीक रखता है। वह समझता

है कि 'खुदाई' और ईश-राज्य (The divine kingdom of God) भी सांसारिक राज्य जैसे हैं। जिस प्रकार संसार में एक सम्राट होता है और उसके बहुत से मंत्री, विश्वासपात्र प्रबन्धक और व्यवस्थापक और दूसरे अधिकार प्राप्त पदाधिकारी होते हैं, उसी प्रकार विश्व में भी एक बड़ा ईश्वर है और बहुत-से छोटे-छोटे ईश्वर उसके अधीन हैं। जब तक छोटे ईश्वरों को प्रसन्न न किया जाए बड़े ईश्वर तक पहुंच न हो सकेगी। इसलिए उनकी 'इबादत' और पूजा भी करो, उनके आगे भी हाथ फैलाओ, उनके ग़ुस्से से भी डरो, उनको बड़े ईश्वर तक पहुंचने का साधन बनाओ और भेंट और उपहार से उन्हें प्रसन्न रखो।

फिर जब ज्ञान और बढ़ता है तो ईश्वरों की संख्या घटने लगती है। जितने काल्पनिक ईश्वर अज्ञानियों ने गढ़ रखे हैं उनमें से एक-एक के बारे में विचार करने से मनुष्य को मालूम होता चला जाता है कि वे ईश्वर नहीं हैं। हमारी तरह बन्दे हैं, बल्कि हमसे भी अधिक मजबूर हैं। इस तरह वह उनको छोड़ता चला जाता है यहां तक कि अन्त में केवल एक ईश्वर रह जाता है, परन्तु उस एक के विषय में फिर भी उसके विचारों में बहुत कुछ अज्ञान बाक़ी रह जाता है। कोई यह ख़याल करता है कि ईश्वर हमारी तरह शरीरधारी है और एक स्थान पर बैठा हुआ प्रभुता चला रहा है। कोई यह समझता है कि ईश्वर पत्नी और बच्चे वाला है और मनुष्य की तरह उसके यहां भी सन्तानों की परम्परा है। कोई यह कल्पना करता है कि ईश्वर मानव-रूप में भूलोक पर आता है, कोई कहता है कि ईश्वर इस दुनिया के कारखाने को चला कर शान्त बैठ गया है और अब कहीं आराम कर रहा है। कोई समझता है कि ईश्वर के यहां श्रेष्ठ व्यक्तियों और आत्माओं की सिफ़ारिश ले जाना ज़रूरी है और उनको वसीला और साधन बनाये बिना वहां

काम नहीं चलता। कोई अपने ख़याल में ईश्वर का एक रूप निश्चित करता है और 'इबादत' और उपासना के लिए उस रूप को अपने सामने रखना ज़रूरी समझता है। इस प्रकार की अनेक भ्रांतियां 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) को अपनाने पर भी मनुष्य के मन में बाक़ी रह जाती है जिनके कारण वह 'शिर्क' (बहुदेववाद) या'कुफ़्र' (अधर्म) में लिप्त होता है और यह सब अज्ञान का नतीजा है।

सबसे ऊपर 'ला इलाह इल्लल्लाह' का दर्जा है। यह वह ज्ञान है जो स्वयं ईश्वर ने हर ज़माने में अपने 'नबियों' (पैग़म्बरों) के द्वारा मनुष्य के पास भेजा है। यही ज्ञान सबसे पहले मनुष्य हज़रत आदम को देकर पृथ्वी पर उतारा गया था। यही ज्ञान आदम (अ०) के पश्चात् हज़रत नूह, हज़रत इब्राहीम, हज़रत मूसा और दूसरे पैग़म्बरों को दिया गया था। फिर इसी ज्ञान को लेकर सबके अन्त में हज़रत मुहम्मद सल्ल० आये। यह विशुद्ध ज्ञान है जिसमें ज़रा सा भी अज्ञान नहीं है। ऊपर हमने 'शिर्क' और मूर्ति पूजा और 'कुफ़्र' के जितने रूप लिखे हैं उन सबमें मनुष्य इसी कारण ग्रस्त हुआ कि उनके पैग़म्बरों की शिक्षा से मुंह मोड़ कर स्वयं अपनी अनुभव-शक्ति और अपनी बुद्धि पर भरोसा किया। तो आइए हम बताएं कि इस छोटे से वाक्य में कितनी बड़ी वास्तविकता का उल्लेख किया गया है।

१. सबसे पहली चीज़ ईश्वरत्व (Divinity) की कल्पना है। यह विशाल विश्व जिसके आदि और अन्त और विस्तार का ख़याल करने से हमारी बुद्धि थक जाती है, जो न मालूम कितने समय से चला आ रहा है और न मालूम कितने समय तक चला जा रहा है, जिसमें असंख्य जीव आदि उत्पन्न हुए और होते जा रहे हैं, जिसमें ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक चमत्कार हो रहे हैं कि उनको देखकर बुद्धि

दंग हो जाती है। इस विश्व में प्रभुता उसी की हो सकती है जो असीम हो, सदैव से हो और सदैव रहे, किसी का आश्रित न हो, अपेक्षारहित और परम स्वतन्त्र हो, सर्वशक्तिमान् हो। तत्वदर्शी (All-wise) और विवेकशील हो, सर्वज्ञ हो और कोई चीज़ उससे छिपी हुई न हो। सब पर उसका वश हो और कोई उसके आदेश का उल्लंघन न कर सके, अपार शक्ति का अधिकारी हो और विश्व की सभी चीज़ों को उससे जीवन और आजीविका-सामग्री मिले। दोष, अपूर्णता और हर प्रकार की कमज़ोरियों से रहित हो और उसके कामों में कोई हस्तक्षेप न कर सके।

२. ईश्वरत्व के इन समस्त गुणों का केवल एक व्यक्तित्व में एकत्र होना आवश्यक है। यह असम्भव है कि दो व्यक्तित्व में ये गुण समान रूप से पाये जाते हों, क्योंकि सब पर प्रभावपूर्ण अधिकार रखने वाला और सबका शासक तो एक ही हो सकता है। यह भी सम्भव नहीं है कि ये गुण बंटकर बहुत से ईश्वरों में बंट जायें, क्योंकि यदि शासक एक हो और सर्वज्ञ दूसरा और दाता तीसरा तो प्रत्येक ईश्वर दूसरे पर निर्भर होगा। और यदि एक ने दूसरे का साथ न दिया तो सम्पूर्ण संसार पलक झपकते ही छिन्न-भिन्न हो जायेगा। यह भी सम्भव नहीं कि ये गुण एक से दूसरे में भेजे जा सकें अर्थात् कभी एक ईश्वर में पाये जायें और कभी दूसरे में, क्योंकि जो ईश्वर स्वयं जीवित रहने की शक्ति न रखता हो वह सम्पूर्ण विश्व को जीवन नहीं प्रदान कर सकता, और जो ईश्वर ख़ुद अपने ईश्वरत्व की हिफ़ाज़त न कर सकता हो वह इतने बड़े विश्व पर शासन नहीं कर सकता। अपितु आपको ज्ञान का जितना अधिक प्रकाश मिलेगा उतना ही अधिक आपको विश्वास होता जायेगा कि ईश्वरत्व के गुणों का केवल एक व्यक्तित्व में होना आवश्यक है।

३. ईश्वरत्व की इस पूर्ण और सच्ची कल्पना को ध्यान में रखिए, फिर सम्पूर्ण विश्व पर नज़र डालिए। जितनी चीज़ें आप

देखते हैं, जितनी चीज़ों का अनुभव किसी साधन के द्वारा करते हैं, जितनी चीज़ों तक आपके ज्ञान की पहुंच है उनमें से एक भी इन गुणों से युक्त नहीं है। संसार की सारी चीज़ें दूसरों पर आश्रित हैं, अधीन हैं, बनती और बिगड़ती हैं, मरती और जीती हैं। किसी को एक अवस्था में स्थिरता प्राप्त नहीं। किसी को अपने अधिकार से कुछ करने की ताक़त नहीं, किसी को एक सर्वोच्च नियम के विरुद्ध बाल बराबर हिलने का अधिकार नहीं। उनकी दशा स्वयं इसकी गवाह है कि उनमें से कोई ईश्वर नहीं। किसी में ईश्वरत्व की ज़रा सी भी झलक तक नहीं पाई जाती, किसी का ईश्वरत्त्व में तनिक भी इख़्तियार नहीं है। यही है अर्थ 'ला इलाह' का।

४. विश्व की समस्त चीज़ों से ईश्वरत्व छीन लेने के बाद आपको मानना पड़ता है कि एक और सत्ता है जो सर्वोच्च है, केवल वही समस्त ईश्वरीय गुणों से सम्पन्न है और उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं। यह अर्थ है 'इल्लल्लाह' का।

यह सबसे बड़ा ज्ञान है। आप जितनी जांच-पड़ताल और खोज करेंगे आपको यही मालूम होगा कि यही ज्ञान का सिरा भी है और यही ज्ञान की अन्तिम सीमा भी। भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, खगोल शास्त्र, (Astronomy), भू-विज्ञान, जीव विज्ञान, जन्तु-विज्ञान (Zoology) मानव शास्त्र (Anthropology) तात्पर्य यह कि संसार की वास्तविकता की खोज करने वाले जितने विज्ञान हैं उनमें से चाहे किसी विज्ञान को ले लीजिए, उसके अध्ययन में जितना आप आगे बढ़ते चले जायेंगे 'ला इल्लाह इल्लल्लाह' की सच्चाई आप पर अधिक खुलती जायेगी और इस पर आपका यक़ीन बढ़ता जायेगा। आपको शास्त्रीय खोजों के क्षेत्र में हर-क़दम पर अनुभव होगा कि इस सबसे पहली और सबसे बड़ी सच्चाई से इन्कार करने के बाद विश्व की हर चीज़ बेकार हो जाती है।

मनुष्य के जीवन पर 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) का प्रभाव

अब हम आपको यह बतायेंगे कि 'ला इलाह इल्लल्लाह' के मानने से मुनष्य के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, और इसको न मानने वाला इस लोक और परलोक में क्यों विफल-मनोरथ हो जाता है।

१. इस 'कलमे' पर 'ईमान' रखने वाला संकीर्ण दृष्टि नहीं हो सकता। वह एक ऐसे ईश्वर को मानता है जो धरती और आकाश का बनाने वाला और सारे संसार का पालन-पोषण करने वाला है। इस ईमान के बाद अखिल विश्व में कोई चीज़ भी उसको पराई नहीं दीख पड़ती। वह सबको अपनी ही तरह एक ही मालिक की सम्पत्ति और एक ही सम्राट की प्रजा समझता है। उसकी हमदर्दी और प्रेम और सेवा किसी सीमा में क़ैद नहीं रहती। उसकी दृष्टि वैसी ही व्यापक हो जाती है, जिस तरह ईश्वर का राज्य है। यह बात किसी ऐसे व्यक्ति को हासिल नहीं हो सकती जो बहुत से छोटे-छोटे ईश्वरों को मानता हो या ईश्वर में मानव के सीमित और अपूर्ण गुण मानता हो या सिरे से ईश्वर में विश्वास रखता हो।

२. यह 'कलमा' मनुष्य में उच्चतम कोटि का स्वाभिमान और आत्मगौरव पैदा कर देता है। इस पर विश्वास रखने वाला जानता है कि केवल एक ईश्वर सारी शक्तियों का मालिक है। उसके सिवा हानि-लाभ पहुंचाने वाला नहीं। कोई मारने और जिलाने वाला नहीं, कोई अधिकारी और प्रभावशाली नहीं। यह ज्ञान और विश्वास उसको ईश्वर के सिवा समस्त शक्तियों से बेपरवाह और निर्भय कर देता है। उसका सिर सृष्टि के किसी जीव आदि के आगे नहीं झुकता, उसका हाथ किसी के आगे नहीं फैलता, उसके दिल में किसी का सिक्का नहीं बैठता। यह विशेषता सिवाय "तौहीद" (एकेश्वरवाद) की धारणा के किसी और धारणा से पैदा नहीं होती।

'शिर्क' (बहुदेववाद) और 'कुफ़्र' और नास्तिकता की अनिवार्य विशेषता यह है कि मनुष्य सृष्टि के जीव आदि के आगे झुके, उनको हानि-लाभ का मालिक समझे, उनसे डरे और उन्हीं से आस बांधे।

३. स्वाभिमान के साथ यह 'कलमा' मनुष्य में विनम्रता भी पैदा करता है। इसका मानने वाला कभी अहंकारी और अभिमानी नहीं हो सकता। अपनी शक्ति और धन और योग्यता का घमण्ड उसके मन में समा ही नहीं सकता, क्योंकि वह जानता है कि उसके पास जो कुछ है ईश्वर ही का दिया हुआ है और ईश्वर को जिस तरह देने का सामर्थ्य प्राप्त है उसी तरह छीन भी सकता है। इस के विपरीत नास्तिकता के साथ जब मनुष्य को किसी प्रकार की सांसारिक कुशलता प्राप्त होती है तो वह अहंकारी हो जाता है, क्योंकि वह अपनी कुशलता को केवल अपनी योग्यता का फल समझता है। इसी तरह 'शिर्क' (अनेकेश्वरवाद) और 'कुफ़्र' (अधर्म) के साथ भी गर्व का पैदा होना लाज़िमी है, क्योंकि 'मुश्रिक' (बहुदेववादी) और 'काफ़िर' अपने मन में यह समझता है कि ईश्वरों और देवताओं से उसका कोई विशेष सम्बन्ध है जो दूसरों को प्राप्त नहीं।

४. इस 'कलमे' पर विश्वास रखने वाला अच्छी तरह समझता है कि मन की शुद्धता और सदाचार के सिवा उसके लिए मुक्ति और कल्याण का कोई साधन नहीं, क्योंकि वह एक ऐसे ईश्वर पर विश्वास रखता है जो अपेक्षारहित और परम-स्वतंत्र है, किसी से उसका कोई नाता नहीं, बेलाग न्याय करने वाला है और किसी को उसके ईश्वरत्व में अधिकार या प्रभाव नहीं। इसके विपरीत 'मुश्रिक' (अनेकेश्वरवादी) और 'काफ़िर' लोग सदा झूठी आशाओं के सहारे जीवन व्यतीत करते हैं। उनमें कोई समझता है कि ईश्वर का पुत्र हमारे लिए प्रायश्चित बन गया है। कोई ख़याल

करता है कि हम ईश्वर के प्रिय हैं और हमें दण्ड मिल ही नहीं सकता, कोई यह समझता है कि हम अपने पूर्वजों से ईश्वर के यहां सिफ़ारिश करा लेंगे। कोई अपने देवताओं को भेंट-उपहार और पुजापा देकर समझ लेता है कि अब उसे संसार में सब कुछ करने का लाइसेंस (Licence) मिल गया है। इस प्रकार की झूठी धारणाएं इन लोगों को सदा गुनाहों, पापों और दुष्कर्मों के जाल में फंसाये रखती हैं और वह इनके भरोसे पर आत्मा की शुद्धता और सत्कर्म के प्रति सचेत नहीं रह पाते। रहे नास्तिक, तो उनका सिरे से यह विश्वास ही नहीं कि कोई सर्वोच्च सत्ता उनसे भले या बुरे कर्मों के विषय में पूछ-ताछ करने वाली भी है, अतएव वे संसार में अपने आपको आज़ाद समझते हैं, उनकी अपनी तुच्छ इच्छा उनका ईश होती है और वे उसी के दास होते हैं।

५. इस 'कलमे' को मानने वाला किसी हालत में निराश नहीं होता और न उसका दिल टूटता है। वह एक ऐसे ईश्वर पर 'ईमान' रखता है जो धरती और आकाश के समस्त ख़ज़ानों का मालिक है। जिसकी कृपा और अनुग्रह असीम और अपरिमित है और जिसकी शक्तियां अनन्त हैं। यह 'ईमान' उसको असाधारण शान्ति प्रदान करता है, उसे परितोष से सम्पन्न कर देता है और सदैव आशायुक्त रखता है। चाहे वह संसार के समस्त द्वार से ठुकरा दिया जाये, समस्त साधनों का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाये और समस्त उपाय और उपकरण एक-एक करके उसका साथ छोड़ दें, फिर भी एक ईश्वर का सहारा किसी दशा में भी उसका साथ नहीं छोड़ता और उसी के बल-बूते पर वह नई आशाओं के साथ कोशिश-पर-कोशिश किये चला जाता है। यह आत्म—सन्तोष और दिल का जमाव 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) की धारणा के अतिरिक्त और किसी धारणा से प्राप्त नहीं हो सकता। 'मुश्रिक'

(अनेकेश्वरवादी) और 'काफ़िर'.(अविश्वासी) और नास्तिक छोटे दिल के होते हैं, उनका भरोसा सीमित शक्तियों पर होता है, इसलिए कठिनाइयों में शीघ्र ही उन्हें निराशा घेर लेती है और बहुत से तो ऐसी दशा में आत्महत्या तक कर डालते हैं।

६. इस 'कलमे' पर विश्वास मनुष्य में संकल्प, साहस और धैर्य ओर अल्लाह पर भरोसे की प्रबल शक्ति पैदा कर देता है। वह जब ईश्वर की प्रसन्नता के लिए दुनिया में बड़े कार्य सम्पन्न करने के लिए उठता है, तो उसके मन में यह विश्वास होता है कि मेरे पोषण के लिए धरती और आकाश के सम्राट की शक्ति है। यह भावना उसमें पर्वत की-सी मज़बूती पैदा कर देती है और संसार की सारी कठिनाइयां और कष्ट और विरोधी शक्तियां मिलकर भी उनको अपने संकल्प से डगमगा नहीं सकतीं। 'शिर्क' (बहुदेववाद) और 'कुफ़्र' और नास्तिकता में यह शक्ति कहां?

७. यह 'कलमा' मनुष्य को वीर बना देता है। देखिए मनुष्य को कायर बनाने वाली वास्तव में दो चीज़ें होती हैं। एक तो प्राण, धन और बाल -बच्चों का मोह, दूसरे यह धारणा कि ईश्वर के सिवा कोई और मारने वाला है, और यह कि इंसान अपने उपायों से मृत्यु को टाल सकता है। 'ला इलाह इल्लल्लाह' का विश्वास इन दोनों चीज़ों को दिल से निकाल देता है। पहली चीज़ तो इसलिए निकल जाती है कि इसका मानने वाला अपने प्राण और धन और हर चीज़ का स्वामी ईश्वर ही को समझता है और उसकी प्रसन्नता के लिए सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार हो जाता है। रही दूसरी चीज़, तो वह इसलिए बाक़ी नहीं रहती कि 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहने वाले के विचार में प्राण लेने की शक्ति किसी मनुष्य या जानवर या तोप या तलवार या लकड़ी या पत्थर में नहीं है। इसका अधिकार केवल ईश्वर को है और उसने मृत्यु का जो समय

निश्चित कर दिया है उससे पहल संसार की समस्त शक्तियां मिलकर भी चाहें, तो किसी का प्राण नहीं ले सकतीं। यही कारण है कि अल्लाह पर 'ईमान' रखने वाले से अधिक वीर संसार में कोई नहीं होता। उसके मुक़ाबले में तलवारों की बाढ़ और गोलियों की बौछार और गोलों की वर्षा और सेनाओं का हमला सब चीज़ें विफल हो जाती हैं। जब वह अल्लाह की राह में लड़ने के लिए बढ़ता है, तो अपने से दस गुनी शक्ति का भी मुंह फेर देता है। 'मुश्रिक' (बहुदेववादी) और काफ़िर (अविश्वासी) और नास्तिक यह ताक़त कहां से लायेंगे? उनको तो प्राण सबसे अधिक प्रिय होते हैं और वे यह समझते हैं कि मृत्यु दुश्मनों के लाने से आती है और उनके भगाने से भाग सकती है।

८. 'ला इलाह इल्लल्लाह' का विश्वास मनुष्य में सन्तोष और निःस्पृहता का गुण पैदा कर देता है। लोभ एवं लोलुपता और ईर्ष्या एवं डाह की तुच्छ भावनाओं को उनके दिल से निकाल देता है। सफलता प्राप्त करने के अवैध और नीच उपायों को अपनाने का ख़याल तक उसके मन में नहीं आने देता। वह समझता है कि रोज़ी अल्लाह के हाथ में है जिसको चाहे अधिक दे, जिसको चाहे कम दे। इज़्ज़त और शक्ति और यश और राज्य सब कुछ ईश्वर के अधिकार में है। वह गुप्त भलाई के मुताबिक़ जिसको जितना चाहता है देता है। हमारा काम केवल अपनी हद तक उचित प्रयत्न करना है। सफलता और असफलता ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। वह यदि देना चाहे, तो संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती और न देना चाहे, तो कोई शक्ति दिला नहीं सकती। इसके विपरीत 'मुश्रिक' और 'काफ़िर' और नास्तिक अपनी सफलता और असफलता को अपने प्रयत्न और सांसारिक शक्तियों की सहायता या विरोध पर टिका हुआ समझते हैं इसलिए उन पर लोभ और

लोलुपता पूर्ण अधिकार जमाये हुए होती है। सफलता प्राप्त करने के लिए रिश्वत, चापलूसी, साज़िश और हर प्रकार के नीचतम साधनों को अपनाने में उन्हें हिचक नहीं होती। दूसरों की सफलता पर ईर्ष्या और डाह में जले मरते हैं और उनको नीचा दिखाने के किसी बुरे-से-बुरे उपाय को भी नहीं छोड़ते।

९. सबसे बड़ी चीज़ यह है कि 'ला इलाह इल्लल्लाह' पर विश्वास मनुष्य को ईश्वर के क़ानून का पाबन्द बनाता है। इस 'कलमे' पर 'ईमान' लाने वाला यक़ीन रखता है कि ईश्वर हर छिपी और खुली चीज़ की ख़बर रखता है। वह हमारी शाह-रग से भी अधिक समीप है। यदि हम रात के अंधकार में और एकांत कमरे में भी कोई पाप करें, तो ईश्वर को उसकी ख़बर हो जाती है। यदि हमारे दिल की गहराई में भी कोई बुरा इरादा पैदा हो तो ईश्वर तक उसकी सूचना पहुंच जाती है। हम सबसे छिपा सकते हैं, परन्तु ईश्वर से नहीं छिपा सकते, सबसे भाग सकते हैं परंतु ईश्वर के राज्य से नहीं निकल सकते। सबसे बच सकते हैं, परन्तु ईश्वर की पकड़ से बचना नामुमकिन है। यह विश्वास जितना मज़बूत होगा उतना ही अधिक मनुष्य अपने ईश्वर के आदेशों का पालन करेगा। जिस चीज़ को ईश्वर ने हराम (अवैध) किया है वह उसके पास भी न फटकेगा और जिस चीज़ का उसने आदेश दिया वह उसके एकान्त और अन्धकार में भी मानेगा, क्योंकि उसके साथ एक ऐसी पुलिस लगी हुई है जो किसी हालत में उसका पीछा नहीं छोड़ती और उसको ऐसी अदालत (Court) का खटका लगा हुआ है, जिसके वारन्ट (Warrant) से वह कहीं भाग ही नहीं सकता। यही कारण है कि मुस्लिम होने के लिए सबसे पहली और ज़रूरी शर्त 'ला इलाह इल्लाल्लाह' पर ईमान लाना है। जैसा कि आपको शुरू में बताया जा चुका है। मुस्लिम का अर्थ है ईश्वर का आज्ञाकारी बन्दा

(सेवक), और ईश्वर का आज्ञाकारी होना सम्भव ही नहीं जब तक कि मनुष्य इस बात पर विश्वास न करे कि अल्लाह के सिवा कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की शिक्षा में यह अल्लाह पर ईमान सबसे महत्वपूर्ण और मौलिक चीज़ है। यह इस्लाम का केन्द्र है, उसका मूल है, उसकी शक्ति का उद्गम है। इसके अतिरिक्त इस्लाम की जितनी धारणायें और आदेश और क़ानून हैं सब इसी आधार पर स्थित हैं और उन सबको इसी केन्द्र से शक्ति पहुंचती है। इसको हटा देने के बाद इस्लाम कोई चीज़ नहीं रहता।

अल्लाह के फ़रिश्तों पर ईमान

अल्लाह पर ईमान के बाद दूसरी चीज़ जिस पर हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने 'ईमान' लाने का आदेश दिया है वह फ़रिश्तों का वजूद है, और बड़ा लाभ इस शिक्षा का यह है कि इससे 'तौहीद' (एकेश्वरवाद) की धारणा को 'शिर्क' (Polytheism) की समस्त सन्देहों से नजात मिल जाती है।

ऊपर आपको बताया जा चुका है कि 'मुश्रिकों' (बहुदेववादियों) ने ईश्वरत्व में सृष्टि की दो प्रकार की चीज़ों को शामिल किया है: एक प्रकार तो उनका है जिनका भौतिक (Material) अस्तित्व है और जो दीख पड़ती हैं, जैसे सूर्य, चन्द्रमा और तारे, आग और पानी और मनुष्यों में महान लोग इत्यादि। दूसरा प्रकार उनका है जिनका अस्तित्व भौतिक नहीं है बल्कि वे निगाहों से ओझल हैं और परोक्ष रूप से विश्व का प्रबन्ध-कार्य कर रही हैं, जैसे कोई हवा चलाने वाली और कोई पानी बरसाने वाली और कोई प्रकाश करने वाली। इनमें से पहले प्रकार की चीज़ें तो मनुष्य की आंखों के सामने मौजूद हैं। इसलिए उनके ईश्वर होने की

मनाही स्वयं 'ला इलाह इल्लल्लाह' के शब्दों ही से हो जाती है, परन्तु दूसरे प्रकार की चीज़ें अप्रत्यक्ष और रहस्यमय हैं। 'मुश्रिक' (अनेकेश्वरवादी) अधिकतर उन्हीं पर जमे हुए हैं। उन्हीं को देवता और ईश और ईश्वर की सन्तान समझते हैं, उन्हीं की काल्पनिक मूर्तियां बना कर भेंट और पुजापा चढ़ाते हैं, अतएव एकेश्वरवाद को 'शिर्क' (अनेकेश्वरवाद) की इस दूसरी शाखा से बचाने के लिए एक स्थायी धारणा का वर्णन किया गया है।

हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने हमें बताया है कि ये छिपी हुई सूक्ष्म सत्ताएं (Spiritual beings), जिनको देवता और ईश और ईश्वर की सन्तान कहते हो वास्तव में ये ईश्वर के 'फ़रिश्ते' (Angels) हैं। इनका ईश्वरत्व में कोई अधिकार और भाग नहीं है। ये सब ईश्वर के आज्ञाकारी हैं और इतने आज्ञापालक हैं कि ईश्वरीय आदेश का तनिक भी उल्लंघन नहीं कर सकते। ईश्वर इनके द्वारा अपने राज्य का प्रबन्ध करता है और ये ठीक-ठीक उसके आदेश का पालन करते हैं। इनको स्वयं अपने अधिकार से कुछ करने की शक्ति प्राप्त नहीं। ये अपनी शक्ति से ईश्वर की सेवा में कोई प्रस्ताव पेश नहीं कर सकते। इनमें यह साहस और ताक़त नहीं कि उसके सामने किसी की सिफ़ारिश करें, इनकी पूजा करना और इनसे सहायता की याचना करना तो मनुष्य के लिए अपमान है, क्योंकि मनुष्य की सृष्टि के प्रारम्भिक दिन ईश्वर ने इनसे आदम को 'सजदा' कराया था और आदम को इनसे बढ़कर ज्ञान प्रदान किया था और इनको छोड़ कर आदम को धरती पर 'ख़िलाफ़त' (प्रतिनिधित्व) प्रदान किया था। तो जिस मनुष्य के सामने ये फ़रिश्ते सिर झुकायें उनके लिए इससे बढ़कर क्या अपमान हो सकता है कि वह उलटा उनके आगे सजदा करे और उनसे भीख मांगे।

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने एक ओर तो हमको फ़रिश्तों को पूजने और ईश्वरत्व में उन्हें शरीक मानने से रोक दिया, दूसरी ओर आपने हमें यह बताया कि 'फ़रिश्ते' ईश्वर के श्रेष्ठ बन्दे हैं, उसके पैदा किये हुए हैं, पापों से रहित हैं। उनकी प्रकृति ही ऐसी है कि वे ईश्वरीय आदेशों का उल्लंघन नहीं कर सकते। वे सदैव ईश्वर की बन्दगी और 'इबादत' में लगे रहते हैं। उन्हीं में से एक चुने हुए फ़रिश्ते के द्वारा ईश्वर अपने पैग़म्बरों पर वही (ईश्वरीय वाणी) भेजता है जिनका नाम जिबरील है। हज़रत मुहम्मद सल्ल० के पास जिबरील अ० ही के द्वारा कुरआन की आयतें अवतरित हुई थीं। इन्हीं फ़रिश्तों में से वे फ़रिश्ते भी हैं जो हर समय आपके साथ लगे हुए हैं। आपके हर अच्छे और बुरे काम को हर समय देखते रहते हैं। आपकी हर बुरी और अच्छी बात को हर समय सुनते हैं और नोट करते रहते हैं, उनके पास हर व्यक्ति के जीवन का रिकार्ड (अभिलेख) सुरक्षित रहता है। मरने के पश्चात् जब आप ईश्वर के सामने हाज़िर होंगे, तो यह आपका कर्म-लेख प्रस्तुत कर देंगे और आप देखेंगे कि जीवन भर आपने खुले-छिपे जो कुछ भी नेकियां और बुराइयां की थीं वे सब उसमें मौजद हैं।

'फ़रिश्तों' की वास्तविकता हमको नहीं बताई गई केवल उनके गुण बताये गये हैं और उनके अस्तित्व पर विश्वास करने का हुक्म दिया गया है। हमारे पास यह मालूम करने का कोई साधन नहीं कि वे कैसे हैं और कैसे नहीं। अतएव अपनी बुद्धि से उनके व्यक्तित्व के विषय में कोई बात गढ़ लेना अन्याय है। और उनके अस्तित्व को न मानना 'कुफ़्र' (अधर्म) है, क्योंकि न मानने और उनका इन्कार करने के लिए किसी के पास कोई सुबूत नहीं और इन्कार का अर्थ ईश्वर के रसूल (पैग़म्बर) को झूठा ठहराना है, ईश्वर इससे हमें बचाये। हम उनके अस्तित्व को इसलिए मानते हैं कि ईश्वर के सच्चे रसूल (पैग़म्बर, ने हमको उनकी सूचना दी है।

अल्लाह की किताबों पर ईमान

तीसरी चीज़ जिस पर 'ईमान' लाने की शिक्षा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के द्वारा हमको दी गई है, वे अल्लाह की किताबें हैं जो उसने अपने 'नबियों' (पैग़म्बरों) पर उतारीं।

ईश्वर ने जिस तरह हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर कुरआन उतारा है, उसी तरह आपसे पहले जो रसूल (पैग़म्बर) हुए हैं, उनके पास भी किताबें भेजी थीं। उनमें से कुछ किताबों के नाम हमको बता दिये गये हैं, जैसे इब्राहीम के 'सहीफ़े' जो हज़रत इब्राहीम अ० पर अवतरित हुए, तौरात (Torah) जो हज़रत मूसा अ० पर उतरी। ज़बूर (Psalms) जो हज़रत दाऊद के पास भेजी गई और इंजील (Gospel) जो हज़रत ईसा अ० को दी गई। इनके अतिरिक्त दूसरी किताबें जो दूसरे रसूलों (पैग़म्बरों) के पास आई थीं उनके नाम हमें नहीं बताये गये। इसलिए किसी और धार्मिक ग्रंथ के बारे में हम निश्चित रूप से न यह कह सकते हैं कि वह ईश्वर की ओर से है और न यह कह सकते हैं कि वह ईश्वर की ओर से नहीं है। हां, हम 'ईमान' लाते हैं कि जो ग्रन्थ भी ईश्वर की ओर से अवतरित हुए थे वे सब सत्य थे।

जिन किताबों के नाम हमको बताये गये हैं, उनमें इब्राहीम के 'सहीफ़े' तो अब संसार में पाये नहीं जाते। रही तौरात, ज़बूर और इंजील वें तो अवश्य यहूदियों और ईसाइयों के पास मौजूद हैं, परन्तु कुरआन में हमें बताया गया है कि इन सब किताबों में लोगों ने ईश्वर के 'कलाम' को बदल डाला है और अपनी ओर से बहुत-सी बातें उनमें मिला दी हैं। स्वयं ईसाई और यहूदी भी मानते हैं कि मूल ग्रंथ उनके पास नहीं हैं केवल उनके अनुवाद बचे रह गये हैं जिनमें शताब्दियों से फेरबदल (Alteration) होता रहा है और अब तक होता चला आ रहा है। फिर इन ग्रन्थों के पढ़ने से भी स्पष्ट मालूम

होता है कि इनमें बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो ईश्वर की ओर से नहीं हो सकतीं। इसलिए जो ग्रन्थ पाये जाते हैं वे ठीक-ठीक ईश्वरीय ग्रन्थ नहीं हैं, उनमें अल्लाह का 'कलाम' और मनुष्य का 'कलाम' मिल-जुल गये हैं। और यह मालूम करने का कोई साधन नहीं कि अल्लाह का 'कलाम' कौन-सा है और मनुष्यों का 'कलाम' कौन-सा है। अतएव पिछले ग्रन्थों पर ईमान लाने का जो आदेश हमें दिया गया है वह केवल इस हैसियत से है कि ईश्वर ने क़ुरआन से पहले भी संसार को प्रत्येक जाति के पास अपने आदेश अपने नबियों (पैग़म्बरों) के द्वारा भेजे थे। और वे सब उसी ईश्वर के आदेश थे जिसकी ओर से क़ुरआन आया है। क़ुरआन कोई नया और अनोखा ग्रन्थ नहीं है बल्कि उसी शिक्षा को जीवित करने के लिए भेजा गया है जिनको पहले युग के लोगों ने पाया और खो दिया, या बदल डाला या मनुष्य के 'कलाम' को मिला-जुला दिया।

क़ुरआन सबसे अन्तिम ग्रन्थ है। इसमें और पिछले ग्रन्थों में कई हैसियत के अन्तर हैं:

१. पहले जो ग्रन्थ आये थे उनमें से अधिकतर की मूल प्रतियां संसार से ग़ायब हो गईं और उनके केवल अनुवाद रह गये, परन्तु क़ुरआन जिन शब्दों में अवतरित हुआ था ठीक-ठीक उन्हीं शब्दों में मौजूद है। उसके एक अक्षर बल्कि एक मात्रा में भी परिवर्तन नहीं हुआ।

२. पिछले ग्रन्थों में लोगों ने ईश्वरीय वाणी में अपना 'कलाम' मिला दिया है। एक ही ग्रन्थ में ईश्वरीय वाणी भी है, जातीय इतिहास भी है, महापुरुषों के जीवन गाथा भी हैं, टीका और व्याख्या भी है और धर्म—शास्त्रियों के निकाले हुए धार्मिक मसले भी हैं। और ये सब चीज़ें इस तरह गडमड हैं कि ईशवाणी को इनमें से अलग छांट लेना संभव नहीं है, परन्तु क़ुरआन में विशुद्ध ईश्वरीय वाणी (Words of God) हमें मिलती है और उसमें किसी दूसरे के

कलाम की ज़रा भी मिलावट नहीं है। कुरआन की टीका 'हदीस', 'फ़िक्ह' (स्मृति-शास्त्र), रसूल के जीवन चरित्र, 'सहाबा' के जीवन चरित्र और इस्लाम के इतिहास पर मुसलमानों ने जो कुछ भी लिखा वह सब कुरआन से बिल्कुल अलग दूसरे ग्रन्थों में लिखा है। कुरआन में उनका एक शब्द भी मिलने नहीं पाया है।

३. जितने धार्मिक ग्रन्थ संसार की विभिन्न जातियों के पास हैं, उनमें से एक के बारे में भी ऐतिहासिक प्रमाण से यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि उसका सम्बन्ध जिस नबी (पैग़म्बर) से जोड़ा जाता है वास्तव में उसी का है, बल्कि कुछ धार्मिक ग्रन्थ ऐसे भी हैं जिनके बारे में सिरे से यह भी नहीं मालूम कि वह किस ज़माने में नबी पर अवतरित हुए थे, परन्तु कुरआन के बारे में इतने अटल ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद हैं कि कोई व्यक्ति हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के साथ उसका सम्बन्ध होने में सन्देह, कर ही नहीं सकता। उसकी 'आयतों' तक के विषय में यह मालूम है कि कौन-सी आयत कब और कहां उतरी है।

४. पिछले ग्रन्थ जिन भाषाओं में उतरे थे वे एक ज़माने से मुर्दा हो चुके हैं। अब संसार में कहीं भी उनके बोलने वाले बाक़ी नहीं रहे, और उनके समझने वाले भी बहुत कम पाये जाते हैं, ऐसे ग्रन्थ यदि मूल और वास्तविक रूप से पाये भी जायें तो उनके आदेशों को ठीक-ठीक समझना और उनका पालन करना सम्भव नहीं, परन्तु कुरआन जिस भाषा में है वह एक जीवित भाषा है, संसार में करोड़ों व्यक्ति आज भी उसको बोलते हैं, और करोड़ों व्यक्ति उसे जानते और समझते हैं। उसकी शिक्षा का सिलसिला संसार में हर जगह चल रहा है। हर व्यक्ति उसको सीख सकता है और जिसे उसके सीखने का मौक़ा प्राप्त नहीं उसको हर जगह ऐसे व्यक्ति मिल सकते हैं जो कुरआन का अर्थ उसे समझाने की योग्यता रखते हों।

५. जितने धार्मिक ग्रन्थ संसार की विभिन्न जातियों के पास हैं उनमें से प्रत्येक ग्रन्थ में किसी विशेष जाति को संबोधित किया गया है, और प्रत्येक ग्रन्थ में ऐसे आदेश पाये जाते हैं जो मालूम होता है कि एक विशेष युग की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के लिए थे, परन्तु अब न उसकी आवश्यकता है, और न उन्हें व्यवहार में लाया जा सकता है। इससे यह बात अपने आप ज़ाहिर हो जाती है कि ये सब ग्रन्थ अलग-अलग जातियों के लिए ही थे। इनमें से कोई ग्रन्थ भी सारे संसार के लिए नहीं आया था। फिर जिन जातियों के लिए ये ग्रन्थ आये थे उनके लिए भी ये सदैव के लिए न थे, बल्कि किसी विशेष युग के लिए थे। अब कुरआन को देखिये। इस ग्रन्थ में हर जगह मनुष्य को संबोधित किया गया है। इसके किसी एक वाक्य से भी यह सन्देह नहीं हो सकता कि वह किसी विशेष जाति के लिए है फिर इस ग्रन्थ में जितने आदेश दिए गये हैं वे सब ऐसे हैं जिन का हर युग में और हर जगह पालन किया जा सकता है। यह बात साबित करती है कि कुरआन सम्पूर्ण संसार के लिए और सदा के लिए है।

६. पिछले ग्रन्थों में से प्रत्येक में भलाई और सच्चाई की बातें बयान की गई थीं। नैतिकता और सत्यवादिता के नियम सिखाये गये थे, ईश्वर की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने के तरीक़े बताये गये थे, परन्तु कोई एक किताब भी ऐसी न थी जिसमें समस्त विशेषताओं को एक जगह एकत्र कर दिया गया हो और कोई चीज़ छोड़ी न गई हो। यह बात केवल कुरआन में है कि जितनी विशेषतायें पिछले ग्रन्थों में अलग-अलग थीं वे सब इसमें एकत्र कर दी गई हैं और जो विशेषतायें पिछले ग्रन्थों में नहीं थीं वे भी इस किताब में आ गई हैं।

७. समस्त धार्मिक ग्रन्थों में मनुष्य के हस्तक्षेप से ऐसी बातें मिल गई हैं जो वास्तविकता के विरुद्ध हैं, बुद्धि के विरुद्ध हैं,

अत्याचार और अन्याय पर आधारित हैं, मनुष्य की धारणा और कर्म दोनों को बिगाड़ती है यहां तक कि बहुत से ग्रन्थों में अश्लील, अनैतिक बातें पायी जाती हैं। कुरआन इन सब चीज़ों से बचा हुआ है। इसमें कोई बात भी ऐसी नहीं जो बुद्धि के विपरीत हो, या जिसको प्रमाण या तजरबे से ग़लत साबित किया जा सकता हो। इसके किसी आदेश में अन्याय नहीं है, इसकी कोई बात मनुष्य को गुमराह करने वाली नहीं है। इसमें अश्लीलता और अनैतिकता का नामोनिशान तक नहीं है। आरम्भ से अन्त तक पूरा कुरआन उच्चकोटि की तत्वदर्शिता (Wisdom) एवं बुद्धिमत्ता और न्याय और इन्साफ़ की शिक्षा और सन्मार्ग–दर्शन, उत्तम आदेश और नियमों से परिपूर्ण है।

यही विशेषताएं हैं जिनके कारण सम्पूर्ण संसार की जातियों को आदेश दिया गया है कि कुरआन पर 'ईमान' लायें और समस्त ग्रन्थों को छोड़कर केवल इसी एक ग्रंथ का आज्ञापालन करें क्योंकि मनुष्य को ईश्वर की इच्छा के अनुसार जीवन बिताने के लिए जितने आदेशों की आवश्यकता है वे सब इसमें बिना कमी-बेशी के बयान कर दी गई हैं, यह ग्रन्थ आ जाने के बाद किसी दूसरे ग्रन्थ की आवश्यकता ही नहीं रही।

जब आप को मालूम हो गया कि कुरआन और दूसरे ग्रंथों में क्या अंतर है, तो यह बात आप ख़ुद समझ सकते हैं कि दूसरे ग्रंथों पर 'ईमान' और कुरआन पर ईमान में क्या अन्तर होना चाहिए, पिछले ग्रन्थों पर 'ईमान' केवल तसदीक़ की हद तक है अर्थात् वे सब ईश्वर की ओर से थे और सच्चे थे और उसी उद्देश्य से आये थे जिसको पूरा करने के लिए कुरआन आया है और कुरआन पर 'ईमान' इस हैसियत से है कि यह विशुद्ध ईश्वरीय वाणी (अल्लाह का कलाम) है, सर्वथा सत्य है, इसका प्रत्येक शब्द सुरक्षित है,

इसकी हर बात सत्य है, इसके हर आदेश का अनुपालन अनिवार्य है और हर वह बात रद्द कर देने योग्य है जो क़ुरआन के विरुद्ध हो।

अल्लाह के रसूलों पर ईमान

ग्रंथों के पश्चात् हम को ईश्वर के समस्त रसूलों (पैग़म्बरों) पर भी 'ईमान' लाने का आदेश दिया गया है।

यह बात आप को पिछले अध्याय में बताई जा चुकी है कि ईश्वर के रसूल संसार की सभी जातियों के पास आये थे और उन सबने उसी इस्लाम की शिक्षा दी थी जिसकी शिक्षा देने के लिए अन्त में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) आये। इस दृष्टि से ईश्वर के सब रसूल एक ही गिरोह के लोग थे। यदि कोई व्यक्ति उन में से किसी एक को भी झूठा ठहराये तो मानो उसने सबको झुठला दिया और किसी एक की भी तसदीक़ करे तो आप-से-आप उसके लिए आवश्यक हो जाता है कि सब की तसदीक़ करे। मान लीजिए दस व्यक्ति एक ही बात कहते हैं, जब आप ने एक को सच्चा मान लिया तो आप-से-आप आपने शेष नौ को भी सच्चा मान लिया। यदि आप एक को झूठा कहेंगे तो इसका अर्थ है कि आपने उस बात को ही झूठ माना है जिसे वह बयान कर रहा है और इससे दसों का झूठा सिद्ध होना साबित होगा। यही कारण है कि इस्लाम में सभी रसूलों पर 'ईमान' लाना आवश्यक है, जो व्यक्ति किसी रसूल (पैग़म्बर) पर 'ईमान' न लायेगा वह 'काफ़िर' (अविश्वासी) होगा भले ही यह अन्य सभी 'रसूलों' को मानता हो।

कुछ उल्लेखों के अनुसार संसार की विभिन्न जातियों में जो नबी (पैग़म्बर) भेजे गये हैं उनकी संख्या एक लाख चौबीस हज़ार है। यदि आप विचार करें कि दुनिया कब से आबाद है और उसमें कितनी जातियां गुज़र चुकी हैं तो यह संख्या कुछ भी ज़्यादा मालूम

न होगी। इन सवा लाख नबियों (पैग़म्बरों) में से जिनके नाम हमको कुरआन में बताये गये हैं उन पर तो निश्चयपूर्वक ईमान लाना आवश्यक है, बाकी सभी के बारे में हमें केवल यह विश्वास रखने की शिक्षा दी गई है कि जो लोग भी ईश्वर की ओर से उसके बन्दों के मार्ग-दर्शन के लिए भेजे गए थे वे सब सच्चे थे। भारत, चीन, ईरान, मिस्र, अफ्रीका यूरोप और संसार के दूसरे देशों में जो नबी (पैग़म्बर) आए होंगे हम उन सब पर 'ईमान' लाते हैं, परन्तु हम किसी विशेष व्यक्ति के बारे में यह नहीं कह सकते कि वह 'नबी' था और न यह कह सकते हैं कि वह नबी न था, इसलिए कि हमें उसके बारे में कुछ बताया नहीं गया, हां, विभिन्न धर्मों के अनुयायी जिन लोगों को अपना पेशवा मानते हैं उनके विरुद्ध कुछ कहना हमारे लिए उचित नहीं, बहुत संभव है कि वास्तव में वे नबी (पैग़म्बर) हों और बाद में उनके अनुयायियों ने उनके धर्म को बिगाड़ दिया हो जिस तरह हज़रत मूसा अ० और हज़रत ईसा अ० के अनुयायियों ने बिगाड़ा। अतएव हम जो कुछ भी सम्मति प्रकट करेंगे उनके मतों और प्रथाओं के बारे में प्रकट करेंगे, परन्तु पेशवाओं के बारे में चुप रहेंगे ताकि बिना जाने-बूझे हमसे किसी रसूल (पैग़म्बर) के सिलसिले में गुस्ताख़ी न हो जाये।

पिछले रसूलों में और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) में इस दृष्टि से तो कोई अन्तर नहीं कि आपकी तरह वे सब भी सच्चे थे, ईश्वर के भेजे हुए थे, इस्लाम का सीधा मार्ग बताने वाले थे और हमें सब पर 'ईमान' लाने का हुक्म दिया गया है, परन्तु इन सब पहलुओं से समानता होने पर भी आप में और दूसरे पैग़म्बरों में तीन बातों का अन्तर भी है:

एक यह कि पिछले 'नबी' विशेष जातियों में विशेष युगों के लिए आये थे और हज़रत मुहम्मद सल्ल० सम्पूर्ण संसार के लिए

और सदा के लिए नबी बनाकर भेजे गये हैं, जैसा कि हम पिछले अध्याय में विस्तृत रूप से बयान कर चुके हैं।

दूसरी बात यह कि पिछले नबियों (पैग़म्बरों) की शिक्षायें या तो संसार से बिल्कुल ग़ायब हो चुकी हैं या कुछ शेष भी रह गई हैं, तो अपने विशुद्ध रूप से सुरक्षित नहीं रही हैं। इसी प्रकार उनके ठीक-ठीक जीवन वृत्तान्त भी आज संसार में कहीं नहीं मिलते, बल्कि उन पर बहुत-सी काल्पनिक कहानियों के रद्दे चढ़ गये हैं। इसलिए यदि कोई उनका अनुवर्त्तन करना चाहे भी, तो नहीं कर सकता। इसके विपरीत हज़रत मुहम्मद सल्ल० की शिक्षा, आपका पवित्र जीवन-चरित्र, आपके मौखिक आदेश, आपके व्यावहारिक तरीके, आपका शील, स्वभाव, प्रकृति, तात्पर्य यह कि हर चीज़ संसार में बिल्कुल सुरक्षित है। इसलिए वास्तव में समस्त पैग़म्बरों में केवल हज़रत मुहम्मद सल्ल० ही एक जीवित पैग़म्बर हैं और केवल आपका अनुसरण करना ही संभव है।

तीसरा यह कि पिछले 'नबियों' के द्वारा इस्लाम की जो शिक्षा दी गई थी वह पूर्ण नहीं थी। हर नबी के बाद दूसरा नबी आकर उसके उपदेश और क़ानून और शिक्षाओं में परिवर्तन और वृद्धि करता रहा और परिवर्तन और प्रगति का क्रम निरन्तर चलता रहा। यही कारण है कि उन नबियों (पैग़म्बरों) की शिक्षाओं को उनका समय बीत जाने के पश्चात् ईश्वर ने सुरक्षित नहीं रखा, क्योंकि प्रत्येक पूर्ण शिक्षा के पश्चात् पिछली अपूर्ण शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं रही। अन्त में हज़रत मुहम्मद सल्ल० के द्वारा इस्लाम की ऐसी शिक्षा दी गई जो हर हैसियत से पूर्ण थी। इसके पश्चात् समस्त नबियों के धर्म-विधान या शरीअतें (Code) आप-से-आप मन्सूख़ (निरस्त) हो गईं, क्योंकि पूर्ण को छोड़ कर अपूर्ण का अनुपालन करना बुद्धि के ख़िलाफ़ है। जो व्यक्ति हज़रत

मुहम्मद सल्ल० का अनुवर्त्तन करेगा उसने मानो समस्त नबियों का अनुवर्त्तन किया, क्योंकि समस्त नबियों की शिक्षाओं में जो कुछ भलाई थी वह सब हज़रत मुहम्मद की शिक्षाओं में मौजूद है। और जो व्यक्ति आप का आज्ञापालन छोड़कर किसी पिछले 'नबी' का आज्ञापालन करेगा वह बहुत-सी भलाइयों से वंचित रह जायेगा, इसलिए कि जो भलाइयां (कल्याणकारी बातें) बाद में आई हैं वे उस पुरानी शिक्षा में न थीं।

इन कारणों से सम्पूर्ण संसार के मनुष्यों के लिए अनिवार्य हो गया है कि वे केवल हज़रत मुहम्मद सल्ल० का आज्ञापालन करें। मुसलमान होने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य हज़रत मुहम्मद सल्ल० पर तीन हैसियतों से 'ईमान' लाये।

एक यह कि आप अल्लाह के सच्चे पैग़म्बर हैं।

दूसरे यह कि आपका मार्ग-दर्शन और शिक्षा बिल्कुल पूर्ण है, उसमें कोई अपूर्णता नहीं और वह प्रत्येक भूल से रहित है।

तीसरे यह कि आप ईश्वर के अन्तिम पैग़म्बर हैं। आपके बाद 'क़ियामत' तक को 'नबी' किसी जाति में आने वाला नहीं है, न कोई व्यक्ति ऐसा आने वाला है जिस पर ईमान लाना मुस्लिम होने के लिए शर्त हो, जिसको न मानने से कोई व्यक्ति 'क़ाफ़िर' हो जाये।

आख़िरत पर ईमान

पांचवीं चीज़ जिस पर हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने हमें ईमान लाने की शिक्षा दी है वह 'आख़िरत' है। आख़िरत के बारे में जिन चीज़ों पर 'ईमान' लाना आवश्यक है वे ये हैं:

१. एक दिन ईश्वर सम्पूर्ण विश्व और सृष्टि के जीव आदि को मिटा देगा। उस दिन का नाम 'क़ियामत' है।

२. फिर वह सबको दूसरा जीवन देगा और सब ईश्वर के सामने पेश होंगे, इसको 'हश्र' (Resurrection) कहते हैं।

३. सब लोगों ने अपने सांसारिक जीवन में जो कुछ किया है उसका पूरा अभिलेख ईश्वर की अदालत में प्रस्तुत किया जायेगा।

४. ईश्वर प्रत्येक व्यक्ति के अच्छे और बुरे कर्म को तौलेगा। जिसकी भलाई ईश्वर की तुला में बुराई से अधिक भारी होगी उसे क्षमा–दान करेगा और जिसकी बुराई का पल्ला भारी रहेगा उसे दण्ड देगा।

५. जिन लोगों को क्षमा मिल जायगी, वे 'जन्नत' (स्वर्ग) में जायेंगे और जिनको दण्ड दिया जायेगा वे 'दोज़ख़' (नरक) में जायेंगे।

आख़िरत पर ईमान की ज़रूरत

आख़िरत की यह धारणा जिस तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने पेश की है उसी तरह पिछले समस्त नबी इसको प्रस्तुत करते आये हैं और हर युग में इस पर ईमान लाना 'मुस्लिम' होने के लिए अनिवार्य शर्त रहा है। समस्त नबियों ने उस व्यक्ति को 'काफ़िर' (अधर्मी) कहा है जो इससे इन्कार करे या इसमें सन्देह करे, क्योंकि इस धारणा के बिना ईश्वर और उसके ग्रन्थों और उसके 'रसूलों' को मानना बिल्कुल बेकार हो जाता है और मनुष्य का सारा जीवन विकृत हो जाता है। यदि आप विचार करें तो यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। आपसे जब भी किसी काम के लिए कहा जाता है तो सबसे पहला प्रश्न जो आप के मन में उत्पन्न होता है वह यहीं है कि इसके करने से क्या लाभ है? और न करने से हानि क्या है? यह प्रश्न क्यों उठता है? इसका कारण यह है

कि मानव प्रकृति प्रत्येक ऐसे कार्य को बेकार समझती है जिसका कोई नतीजा न हो। आप किसी ऐसे काम के लिए तैयार न होंगे जिनके बारे में आपको विश्वास हो कि उससे कोई लाभ नहीं। और इसी प्रकार आप किसी ऐसी चीज़ से बचना भी न चाहेंगे जिसके बारे में आपको विश्वास हो कि उससे कोई हानि नहीं। यही बात सन्देह के बारे में भी है। जिस कार्य के लाभ में सन्देह हो उसमें आप का मन कदापि न लगेगा और जिस काम के हानिकारक होने में सन्देह हो उससे बचने की भी आप कोई विशेष कोशिश न करेंगे। बच्चों को देखिए, वे आग में क्यों हाथ डाल देते हैं? इसीलिए तो कि उन्हें इस बात का विश्वास नहीं कि आग जलाने वाली चीज़ है। और वे पढ़ने से क्यों भागते हैं? इसी कारण से तो कि जो कुछ लाभ उनके बड़े उन्हें सुझाने की कोशिश करते हैं वे उनके दिल को नहीं लगते। अब सोचिए कि जो व्यक्ति 'आख़िरत' को नहीं मानता वह ईश्वर को मानने और उसकी इच्छा के अनुसार चलने को निष्फल समझता है, उसकी दृष्टि में न तो ईश्वर के आज्ञापालन से कोई लाभ है और न उसकी अवज्ञा से कोई हानि। फिर कैसे सम्भव है कि वह उन आदेशों का पालन करे जो ईश्वर ने अपने 'रसूलों' (पैग़म्बरों) और अपने ग्रन्थों के द्वारा दिये हैं? मान लीजिए यदि उसने ईश्वर को मान भी लिया तो ऐसा मानना बिल्कुल बेकार होगा, क्योंकि वह अल्लाह के क़ानून का पालन न करेगा और उसकी इच्छा के अनुसार न चलेगा।

यह मामला यहीं तक नहीं रहता, आप और विचार करेंगे तो आप को मालूम होगा कि 'आख़िरत के मानने या न मानने का मानव-जीवन पर फ़ैसला करने वाला प्रभाव पड़ता है। जैसा कि हमने ऊपर बयान किया, मनुष्य की प्रकृति ही ऐसी है कि वह प्रत्येक कार्य करने या न करने का निर्णय उसके लाभ या हानि की

दृष्टि से करता है। अब एक व्यक्ति तो वह है जिसकी निगाह केवल इसी संसार के लाभ और हानि पर है। वह किसी ऐसे अच्छे काम के लिए कभी भी तैयार न होगा जिससे कोई लाभ इस संसार में प्राप्त होने की आशा न हो, और किसी ऐसे बुरे काम से न बचेगा जिससे इस लोक में कोई हानि पहुंचने का डर न हो। एक दूसरा व्यक्ति है जिसकी निगाह कर्मों के अन्तिम नतीजे पर है, वह सांसारिक लाभ और हानि को केवल अस्थायी और क्षणिक वस्तु समझेगा और 'आख़िरत' के शाश्वत और स्थायी लाभ या हानि का ध्यान रखते हुए भलाई और नेकी को अपनायेगा। और बुराई को छोड़ देगा, भले ही इस संसार में भलाई और नेकी से कितनी ही बड़ी हानि और बुराई से कितना ही बड़ा लाभ होता हो। देखिए, दोनों में कितना बड़ा अन्तर हो गया। एक की नज़र में नेकी वह है जिस का कोई अच्छा परिणाम इस संसार के क्षणिक जीवन में प्राप्त हो जाये, उदाहरणतः कुछ रुपया मिले, कोई भूमि हाथ आ जाये, कोई पद मिल जाये, कुछ यश और शोहरत प्राप्त हो, कुछ लोग वाह-वाह करें या कुछ आनन्द और प्रसन्नता प्राप्त हो जाये, कुछ इच्छायें पूरी हों, कुछ वासना पूरी हो जाये। और बुराई वह है जिससे कोई बुरा परिणाम इस जीवन में सामने आये या सामने आने की आशंका हो, उदाहरणतः प्राण और धन की हानि, अस्वस्थता, अपयश, राज्य की ओर से दण्ड, किसी प्रकार का दुःख और शोक, या खिन्नता। इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति की नज़र में भलाई और नेकी वह है जिससे ईश्वर प्रसन्न हो, और बुराई वह है जिससे ईश्वर अप्रसन्न हो। भलाई यदि संसार में उसको किसी प्रकार का लाभ न पहुंचाये बल्कि उलटा हानि-ही-हानि पहुंचाये तब भी वह उसे भलाई और नेकी ही समझता है और विश्वास रखता है कि अन्त में, ईश्वर उसको कभी न ख़त्म होने वाला लाभ पहुंचायेगा। और बुराई से भले ही यहां किसी प्रकार की हानि न पहुंचे, न हानि का भय हो,

बल्कि पूरी तरह लाभ-ही-लाभ दीख पड़े, फिर भी वह उसे बुराई ही समझता है और विश्वास रखता है कि यदि मैं सांसारिक क्षणिक जीवन में सज़ा से बच गया और कुछ दिन आनन्द करता रहा तब भी अन्त में अल्लाह के अज़ाब से न बचूंगा।

ये दो विभिन्न विचारधाराएं हैं, जिनके प्रभाव से मनुष्य दो विभिन्न तरीक़े अपनाता है। जो व्यक्ति 'आख़िरत' पर विश्वास नहीं रखता उसके लिए सम्भव नहीं कि वह एक पग भी इस्लाम के मार्ग पर चल सके। इस्लाम कहता है कि ईश्वरीय मार्ग में ग़रीबों को 'ज़कात' दो, वह उत्तर देता है कि 'जक़ात' से मेरा धन घट जायेगा, मैं तो अपने धन पर उल्टा ब्योज लूंगा और ब्याज की डिग्री में ग़रीबों के घर का तिनका तक कुर्क़ करा लूंगा। इस्लाम कहता है: हमेशा सत्य बोलो और झूठ से बचो, भले ही सच्चाई में कितनी ही हानि और झूठ में कितना ही लाभ हो। वह उत्तर देता है कि मैं ऐसी सच्चाई को लेकर क्या करूं जिससे मुझे हानि पहुंचे और लाभ कुछ न हो? और ऐसे झूठ से क्यों बचूं जो लाभदायक हो और जिसमें बदनामी का भय तक न हो? वह एक निर्जन मार्ग से जाता है, एक क़ीमती चीज़ पड़ी हुई उसको दीख पड़ती है। इस्लाम कहता है कि यह तेरा माल नहीं है, तू इसको कभी भी न ले। वह उत्तर देता है कि बिना मूल्य के आई हुई चीज़ को क्यों छोड़ दूं। यहां कोई देखने वाला नहीं है, जो पुलिस को सूचना दे या अदालत में गवाही दे, या लोगों में मुझे बदनाम करे, फिर क्यों न मैं इससे लाभ उठाऊं? एक व्यक्ति चुपके से उसके पास अमानत रखवाता है और मर जाता है। इस्लाम कहता है कि किसी की धरोहर न मारो, उसका माल उसके बाल-बच्चों को पहुंचा दो। वह कहता है क्यों? कोई गवाही इस बात की नहीं कि मरने वाले का माल मेरे पास है, खुद उसके बाल-बच्चों को इसकी ख़बर तक नहीं है। जब मैं आसानी के साथ

इसको खा सकता हूं और किसी मुक़दमे, नालिश या किसी अपवाद का भय भी नहीं, तो क्यों न इसे खा जाऊं? तात्पर्य यह कि जीवन-यात्रा में हर क़दम पर इस्लाम उसको एक तरीक़े पर चलाने की शिक्षा देगा, और वह उसके बिल्कुल विरुद्ध दूसरा मार्ग अपनायेगा, क्योंकि इस्लाम में हर चीज़ का महत्व और मूल्य आख़िरत के शाश्वत परिणाम की दृष्टि से है, परन्तु वह व्यक्ति हर मामले में उन परिणामों को देखता है जो इस संसार के क्षणिक जीवन में सामने आते हैं। अब आप स्वयं समझ सकते हैं कि 'आख़िरत' पर ईमान लाये बिना मनुष्य क्यों मुसलमान नहीं हो सकता। मुसलमान तो बड़ी चीज़ है, सत्य तो यह है कि 'आख़िरत' को न मानना मनुष्य को मानवता से गिराकर पशुता से भी बदतर अवस्था में ले जाता है।

आख़िरत की धारणा की सत्यता

'आख़िरत' की धारणा की आवश्यकता और उसके लाभ आपको मालूम हो गये। अब हम संक्षेप में आपको यह बताते हैं कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने 'आख़िरत' की धारणा के विषय में जो कुछ बयान किया है, बौद्धिक दृष्टिकोण से भी वही सत्य प्रतीत होता है, यद्यपि आख़िरत पर हमारा 'ईमान' केवल अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर विश्वास के कारण है, बुद्धि उसका आधार नहीं है, परन्तु जब हम सोच-विचार से काम लेते हैं तो हमें 'आख़िरत' की सभी धारणाओं में सबसे अधिक यही धारणा अक़्ल के मुताबिक़ प्रतीत होती है।

'आख़िरत' के बारे में तीन विभिन्न धारणाएं पाई जाती हैं। एक गिरोह कहता है कि मनुष्य मरने के पश्चात् मिट जाता है, फिर कोई ज़िन्दगी नहीं। यह नास्तिकों का विचार है जो वैज्ञानिक होने का दावा करते हैं।

दूसरा गिरोह कहता है कि मनुष्य अपने कर्मों का फल भोगने के लिए बार-बार इसी संसार में जन्म लेता है। यदि उसके कर्म बुरे हैं तो वह दूसरे जन्म में कोई जानवर जैसे कुत्ता या बिल्ली बन कर आये, या कोई पेड़ बनकर पैदा होगा या किसी निम्न श्रेणी के मनुष्य का रूप धारण करेगा और यदि कर्म अच्छे हैं तो अधिक उच्च श्रेणी में पहुंचेगा। यह विचार कुछ अपरिपक्व धर्मों में पाया जाता है।

तीसरा गिरोह 'क़ियामत' और 'हश्र' (Resurrection) और अल्लाह की अदालत में पेशी और पुरस्कार और दण्ड की प्राप्ति पर 'ईमान' रखता है। यह सारे नबियों (पैग़म्बरों) की सर्वमान्य धारणा है।

अब पहले गिरोह की धारणा पर ग़ौर कीजिए। इन लोगों का यह कहना है कि मरने के पश्चात् किसी को ज़िन्दा होते हमने नहीं देखा। हम तो यही देखते हैं कि जो मरता है वह मिट्टी में मिल जाता है। इसलिए मृत्यु के पश्चात् कोई जीवन नहीं, परन्तु विचार कीजिए क्या यह कोई दलील है? मरने के बाद आपने किसी को जीवित होते नहीं देखा तो आप ज़्यादा-से-ज़्यादा यह कह सकते हैं: "हम नहीं जानते कि मरने के बाद क्या होगा?" इससे आगे बढ़कर आप यह दावा जो करते हैं: "हम जानते हैं कि मरने के बाद "कुछ" न होगा, " इसका आपके पास क्या सुबूत है? एक गॅवार ने यदि वायुयान नहीं देखा तो वह कह सकता है: "मुझे नहीं मालूम कि वायुयान क्या चीज़ है? परन्तु जब वह कहेगा "मैं जानता हूं कि वायुयान कोई चीज़ नहीं है" तो बुद्धिमान उसे बेवकूफ़ कहेंगे। इसलिए कि उसके किसी चीज़ को न देखने का यह अर्थ नहीं होता कि वह चीज़ है ही नहीं। एक व्यक्ति या यदि सम्पूर्ण संसार के लोगों ने भी किसी चीज़ को न देखा हो, तो यह दावा नहीं किया जा सकता कि वह नहीं है या नहीं हो सकती।

इसके बाद दूसरी धारणा को लीजिए। इस धारणा के अनुसार

एक व्यक्ति जो इस समय इन्सान है वह इस लिए इंसान हो गया है कि जब वह जानवर था तो उसने अच्छे कर्म किये थे। और एक जानवर जो इस समय जानवर है वह इसलिए जानवर हो गया कि मनुष्य योनि में उसने बुरे अमल किये थे। दूसरों शब्दों में यों कहिए कि मनुष्य, पशु और पेड़ होना सब दरअसल पूर्व जन्म के कर्मों का नतीजा है।

अब प्रश्न यह है कि पहले क्या चीज़ थी? यदि कहते हैं कि पहले मनुष्य था, तो मानना पड़ेगा कि उससे पहले जानवर या पेड़ होंगे नहीं तो पूछा जायेगा मानव का जिस्म उसे किस अच्छे कर्म के बदले में मिला। यदि कहते हैं जानवर या पेड़ था तो, मानना पड़ेगा कि उससे पहले मनुष्य हो अन्यथा प्रश्न होगा कि पेड़ या जानवर की योनि में वह किस बुरे कर्म का दण्ड भोगने आया है? मतलब यह कि इस अक़ीदे के मानने वाले सृष्टि के जीव आदि का आरम्भ किसी योनि से भी निश्चित नहीं कर सकते, क्योंकि प्रत्येक योनि से पहले एक योनि का होना आवश्यक है ताकि बाद वाली योनि को पहली योनि के व्यवहार का नतीजा कहा जाये। यह बात साफ तौर से बुद्धि के विरुद्ध है।

अब तीसरी धारणा को लीजिए। इसमें सबसे पहले यह कहा गया है: "एक दिन 'क़ियामत' आयेगी और अल्लाह अपने इस कारख़ाने को तोड़-फोड़ कर नये सिरे से एक दूसरा ऊंचे दर्जे का स्थाई कारख़ाना बनायेगा।" यह ऐसी बात है जिसके सही होने में कोई सन्देह नहीं हो सकता। दुनिया के इस कारख़ाने पर जितना विचार किया जाता है उतना ही अधिक इस बात का सुबूत मिलता है कि यह सदैव रहने वाला कारख़ाना नहीं है, क्योंकि जितनी शक्तियां इसमें काम कर रही हैं वे सब सीमित हैं और एक दिन वे निश्चय ही ख़त्म हो जायेंगी। इसलिए समस्त वैज्ञानिक इस बात

पर सहमत हो चुके हैं कि एक दिन सूर्य ठंडा और प्रकाशहीन हो जाएगा, ग्रह एक-दूसरे से टकरायेंगे और संसार नष्ट हो जाएगा।

दूसरी बात यह कही गई है कि मनुष्य को पुनः जीवन दिया जायेगा। क्या यह असंभव है? यदि यह असंभव है तो अब जो जीवन मनुष्य को प्राप्त हैं यह कैसे संभव हो गया? खुली हुई बात है कि जिस ईश्वर ने इस दुनिया में मनुष्य को पैदा किया है वह दूसरे संसार में भी पैदा कर सकता है।

तीसरी बात यह है कि मनुष्य ने इस सांसारिक जीवन में जितने कर्म किये हैं उन सब का लेखा-जोखा (Record) सुरक्षित है और वह 'हश्र' के दिन प्रस्तुत होगा। यह ऐसी चीज़ है जिस का प्रमाण आज हमें इस संसार में भी मिल रहा है। पहले समझा जाता था कि जो आवाज़ हमारे मुंह से निकलती है वह हवा में थोड़ी-सी लहर पैदा करके नष्ट हो जाती है, परन्तु अब मालूम हुआ कि प्रत्येक आवाज़ अपने चारों ओर की चीज़ों पर अपना चिह्न छोड़ जाती है जिसको पुनः पैदा किया जा सकता है। ग्रामोफ़ोन का रेकार्ड इसी सिद्धान्त पर बना है। इसी से यह मालूम हुआ कि हमारी हर गति-विधि का रेकार्ड उन सब चीज़ों पर अंकित हो रहा है, जो किसी रूप में इस गतिविधि के आघात-सम्पर्क में आती हैं। जब हाल यह है तो यह बात सर्वथा विश्वसनीय प्रतीत होती है कि हमारे कर्मों का पूरा लेखा-जोखा सुरक्षित है और पुनः उसे पेश किया जा सकता है।

चौथी बात यह है कि ईश्वर 'हश्र' (पुनरुत्थान) के दिन अदालत करेगा और सत्यतापूर्वक हमारे अच्छे-बुरे कर्मों का पुरस्कार या दण्ड देगा। इसको कौन असम्भव कह सकता है? इसमें कौन-सी बात बुद्धिसंगत नहीं है? बुद्धि तो स्वयं यह चाहती है कि कभी अल्लाह की अदालत हो और ठीक-ठीक सत्यतापूर्वक फ़ैसले

किए जायें। हम देखते हैं कि एक व्यक्ति भलाई करता है और उसका कोई फ़ायदा उसको संसार में नहीं प्राप्त होता। एक व्यक्ति बुराई करता है और इससे कोई हानि उसको नहीं पहुंचती। यही नहीं बल्कि हम हज़ारों मिसालें ऐसी देखते हैं कि एक व्यक्ति ने भलाई की और उसे उल्टा नुकसान हुआ और एक व्यक्ति ने बुराई की और वह भली-भांति सुख भोगता रहा। इस प्रकार की घटनाओं को देखकर बुद्धि की यह मांग होती है कि कहीं-न-कहीं अच्छे मनुष्य को भलाई का और दुष्ट मनुष्य को दुष्टता का फल मिलना चाहिए।

अन्तिम चीज़ 'जन्नत' और 'दोज़ख़' (स्वर्ग और नरक) हैं। इनका होना भी असम्भव नहीं। यदि सूर्य और चन्द्रमा और मंगल और भूमि को ईश्वर बना सकता है, तो 'जन्नत' और 'दोज़ख़' न बना सकने का क्या कारण है? जब अदालत करेगा और लोगों को पुरस्कार और दण्ड देगा तो पुरस्कार पाने वालों के लिए कोई सम्मान और आनन्द और हर्ष का स्थान और दण्ड पाने वालों के लिए कोई अपमान और दुःख और कष्ट का स्थान भी होना चाहिए।

इन बातों पर जब आप विचार करेंगे तो आपकी बुद्धि स्वयं कह देगी मनुष्य के परिणाम के विषय में जितनी भी धारणायें संसार में पाई जाती हैं उनमें सबसे ज़्यादा दिल को लगती हुई धारणा यही है, और इसमें कोई चीज़ बुद्धि के विरुद्ध या असम्भव नहीं है।

फिर जब ऐसी एक बात मुहम्मद (सल्ल०) जैसे सच्चे नबी (पैग़म्बर) ने कही है, और इसमें सर्वथा हमारी भलाई है तो, बुद्धिमानी यह है कि इस पर विश्वास किया जाये, न यह कि यों ही अकारण बिना किसी प्रमाण के सन्देह किया जाए।

कलमए तय्यबह

ये पांच धारणायें हैं जो इस्लाम की आधारशिला है।[1] इन पांचों अक़ीदों का सारांश केवल एक 'कलमे' (वाक्य) में आ जाता है:

'ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'

(अल्लाह के सिवा कोई 'इलाह' नहीं, मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं)।

जब आप 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहते हैं तो सभी झूठे पूज्यों को छोड़कर सिर्फ़ एक ईश्वर की बन्दगी पर सहमत होते हैं और जब 'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' कहते हैं तो इस बात की तसदीक़ करते हैं कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल (पैग़म्बर) हैं। 'रिसालत' (पैग़म्बरी) की तसदीक़ के साथ स्वयं यह बात आपके लिए अनिवार्य हो जाती है कि ईश्वर की सत्ता, गुण, और फ़रिश्तों और आसमानी किताबों (ईश्वरीय ग्रन्थों) और नबियों (पैग़म्बरों) और 'आख़िरत' के बारे में जो कुछ और जैसा कुछ हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने कहा है उस पर 'ईमान' लाइए और अल्लाह की 'इबादत' (बन्दगी और पूजा आदि) और आज्ञापालन का जो तरीक़ा आपने बताया है, उसका पालन कीजिए।

---

१. मैंने यहां धारणाओं की संख्या पांच बताई है। यह गणना क़ुरआन के बयान (सूरः अल-बक़रः आयत २८५, सूरः अन-निसाः आयत १३६) पर आधारित है। इसमें सन्देह नहीं कि 'हदीस' में 'तक़दीर' को भी धारणाओं में शामिल किया गया है और इस प्रकार मौलिक धारणाएं पांच की जगह छः होती हैं; परन्तु वास्तव में 'तक़दीर' पर ईमान अल्लाह पर ईमान लाने का एक पहलू है और क़ुरआन में इस धारणा का उल्लेख इसी हैसियत से हुआ है। इस लिए मैंने भी इस धारणा को 'तौहीद', 'एकेश्वरवाद' की धारणा की व्याख्या में सम्मिलित कर दिया है। ठीक इसी प्रकार कुछ हदीसों में 'जन्नत' और 'दोज़ख़' और 'सिरात' और 'मीज़ान' अलग धारणा के रूप में बयान किया गया है। परन्तु वास्तव में ये सब 'आख़िरत' पर ईमान के हिस्से हैं।

पांचवाँ अध्याय

इबादतें

पिछले अध्याय में आपको बताया गया है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने पांच चीज़ों पर 'ईमान' लाने की शिक्षा दी है:

१— ईश्वर पर जो अकेला है जिसका कोई साझेदार नहीं।

२— ईश्वर के फ़रिश्तों पर।

३— ईश्वरीय ग्रन्थों पर और विशेष रूप से पवित्र क़ुरआन पर (जो ईश्वर का अन्तिम ग्रन्थ है)।

४— ईश्वर के रसूलों (पैग़म्बरों) पर और विशेष रूप से उसके अन्तिम रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर।

५— 'आख़िरत' के जीवन पर।

ये इस्लाम की बुनियादें हैं। जब आप इन पांच चीज़ों पर ईमान ले आये तो मुसलमानों के समूह में शामिल हो गये, परन्तु अभी पूरे मुस्लिम नहीं हुए। पूरा मुस्लिम मनुष्य उस समय होता है, जब वह उन आदेशों का पालन करे जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने ईश्वर की ओर से दिये हैं, क्योंकि 'ईमान' लाने के साथ ही आज्ञाओं का पालन करना आपके लिए अनिवार्य हो जाता है। आज्ञापालन ही का नाम इस्लाम है। देखिए, आपने माना कि ईश्वर है, इसका अर्थ यह है कि वह आपका प्रभु और मालिक है, और आप उसके दास और सेवक, वह आप का शासक है और आप उसके आज्ञाकारी। अब यदि उसको मालिक और शासक मानकर आपने अवज्ञा की तो

आप स्वयं अपने इकरार के अनुकूल विद्रोही और अपराधी हुए। फिर आपने माना कि कुरआन ईश्वरीय ग्रन्थ है, इसका अर्थ यह है कि कुरआन में जो कुछ है आपने मान लिया कि वह अल्लाह की ही वाणी है। अब आपके लिए अनिवार्य हो गया कि उसकी हर बात को मानें और हर आदेश पर सिर झुका दें। फिर आपने यह भी माना है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ईश्वर के रसूल हैं। यह वास्तव में इस बात का इकरार है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का किसी चीज़ का हुक्म देना और किसी चीज़ से रोकना ईश्वर की ओर से है। अब इस इकरार के बाद हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का आज्ञापालन आपके लिए अनिवार्य हो गया। अतएव आप पूर्ण "मुस्लिम" उस समय होंगे जब आपका आचरण आपके ईमान के मुताबिक हो। अन्यथा जितना आपके ईमान और आपके आचरण में अंतर रहेगा, उतना ही आपका 'ईमान' अपूर्ण रहेगा।

आइए अब हम आपको बतायें कि हज़रत मुहम्मद सल्ल० ने आपको ईश्वरीय इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का क्या तरीका सिखाया है। किन चीज़ों के आचरण का आदेश दिया है और किन चीज़ों से रोका है। इस सिलसिले में सबसे पहली चीज़ वे 'इबादतें' (उपासनायें) हैं जो आपके लिए ज़रूरी ठहराई गई हैं।

इबादत का अर्थ

'इबादत' का अर्थ वास्तव में बन्दगी और दासता है। आप 'अब्द' (बन्दा, दास) हैं। ईश्वर आपका प्रभु और उपास्य है। दास अपने उपास्य और प्रभु के लिए जो कुछ करे वह 'इबादत' है, जैसे आप लोगों से बातें करते हैं, इन बातों के दौरान यदि आप झूठ से, परनिन्दा से, अश्लीलता से इसलिए बचें कि ईश्वर ने इन चीज़ों से रोका है और सदा सच्चाई, न्याय, नेकी और पवित्रता की बात कीं, इसलिए कि ईश्वर इनको पसन्द करता है तो आपकी ये सब बातें

'इबादत' होंगी, भले ही वे सब दुनिया के मामले ही में क्यों न हों। आप लोगों से लेन-देन करते हैं, बाज़ार में क्रय-विक्रय करते हैं, अपने घर में माता-पिता और भाई-बहिनों के साथ रहते-सहते हैं, अपने मित्रों और संबन्धियों से मिलते-जुलते हैं। यदि अपने जीवन के इन सारे मामलों में आपने ईश्वर के आदेश को और उसके कानून को ध्यान में रखा, हर एक का हक अदा किया, यह समझ कर कि अल्लाह ने इसका आदेश दिया है, और किसी का हक नहीं मारा यह समझकर कि ईश्वर ने इससे रोका है, तो मानो आपका यह सम्पूर्ण जीवन अल्लाह की 'इबादत' में व्यतीत हुआ। आपने किसी ग़रीब की सहायता की, किसी भूखे को भोजन कराया, किसी बीमार की सेवा की और इन सब कामों में आपने अपने किसी व्यक्तिगत लाभ या सम्मान या यश को नहीं बल्कि ईश्वर ही की प्रसन्नता को ध्यान में रखा, तो इन सब की गणना 'इबादत' में होगी। आपने व्यापार या शिल्प या मज़दूरी का कार्य किया और उसमें ईश्वर से डर कर पूरी सत्य-निष्ठा और ईमानदारी से काम किया, हलाल की रोटी कमाई और हराम से बचे, तो यह रोटी कमाना भी अल्लाह की 'इबादत' में लिखा जायेगा हालांकि आपने अपनी रोज़ी कमाने के लिए ये काम किये थे। तात्पर्य यह कि दुनिया की ज़िन्दगी में हर समय हर मामले में ईश्वर से डरना, उसकी प्रसन्नता को ध्यान में रखना, उसके कानून का पालन करना, हर ऐसे लाभ को ठुकरा देना जो उसकी अवज्ञा से प्राप्त होता हो और हर ऐसी हानि को गवारा कर लेना जो उसके आज्ञापालन में पहुंचे या पहुंचने का भय हो, यह अल्लाह की 'इबादत' है। इस प्रकार का जीवन सर्वथा 'इबादत' ही 'इबादत' है, यहां तक कि ऐसे जीवन में खाना-पीना, चलना-फिरना, सोना जागना, बात-चीत करना सब कुछ 'इबादत' में शामिल है।

यह 'इबादत' का वास्तविक अभिप्राय है और इस्लाम का वास्तविक उद्देश्य मुसलमान को ऐसा ही उपासक और सेवक बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस्लाम में कुछ ऐसी इबादतें अनिवार्य की गई हैं, जो मनुष्य को इस बड़ी इबादत के लिए तैयार करती हैं। यों समझ लीजिए कि ये विशेष 'इबादतें' इस बड़ी 'इबादत' के लिए ट्रेनिंग कोर्स हैं, जो व्यक्ति यह ट्रेनिंग अच्छी तरह लेगा वह इस बड़ी और वास्तविक 'इबादत' को उतनी ही अच्छी तरह अदा कर सकेगा। इसीलिए इन विशेष 'इबादतों को मुख्य कर्तव्य ठहराया गया है और इन्हें 'दीन के अरकान' अर्थात् धर्म-स्तम्भ कहा गया है। जिस प्रकार एक भवन कुछ स्तम्भों पर स्थित होता है, उसी प्रकार इस्लामी जीवन का भवन भी इन स्तम्भों पर क़ायम है। इन्हें तोड़ देंगे तो इस्लाम के भवन को गिरा देंगे।

नमाज़

इन अनिवार्य चीज़ों में सबसे पहली 'नमाज़' है। यह नमाज़ क्या है? दिन में पांच बार ज़बान से और अमल से उन ही चीज़ों को दोहराना जिन पर आप 'ईमान' लाये हैं। आप प्रातः काल उठे और सब से पहले स्वच्छ और शुद्ध होकर अपने ईश्वर की सेवा में पहुंच गये, उसके सामने खड़े होकर, बैठ कर, झुक कर, भूमि पर सिर रख कर अपने सेवक और दास होने का इक़रार किया, उससे मदद मांगी, उससे मार्गदर्शन चाहा, उसके आदेशों पर चलने की पुनः प्रतिज्ञा की, उस की प्रसन्नता चाहने और उसके प्रकोप से बचने की इच्छा को बार-बार दोहराया, उसके ग्रन्थ का पाठ दोहराया। उसके रसूल (पैग़म्बर) की सचाई पर गवाही दी और उस दिन को भी याद कर लिया जब आप उसकी अदालत में अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी के रूप में उपस्थित होंगे। इस तरह आपका दिन शुरू

हुआ। कुछ घन्टे आप अपने कार्यों में लगे रहे फिर 'जुह्र'[1] के समय 'मुअज़्ज़िन' (अज़ान देने वाले) ने आपको याद दिलाया, आओ और कुछ क्षण के लिए उस पाठ को फिर दुहरा लो। कहीं ऐसा न हो कि उसको भूल कर तुम ईश्वर की ओर से असावधान हो जाओ। आप उठे और ईमान ताज़ा करके फिर संसार और उसके कार्य की ओर पलट आये। कुछ घंटों के पश्चात् फिर 'अस्र'[2] के समय आपको बुलाया गया और आपने फिर ईमान ताज़ा कर लिया। इसके पश्चात् मग़रिब (सूर्यास्त) हुई और रात शुरू हो गई; प्रातः समय आपने दिवस का आरम्भ जिस 'इबादत' के साथ किया था, रात का आरम्भ भी उसी से किया, ताकि रात को भी आप उस पाठ को भुलने न पायें और उसे भूल कर भटक न जायें। कुछ घण्टों के पश्चात् 'इशा'[3] हुई और सोने का समय आ गया। अब अन्तिम बार आपको ईमान की समस्त शिक्षा याद करा दी गई क्योंकि यह शान्ति का समय है। दिन के हंगामे में यदि आपको पूर्ण रूप से ध्यान देने का अवसर न मिला हो, तो इस समय इत्मिनान के साथ ध्यान दे सकते हैं।

देखिये यह वह चीज़ है जो हर दिन पांच बार आपके इस्लाम के आधार को मज़बूत करती है। यह बार-बार आपको उस बड़ी 'इबादत' के लिए तैयार करती है जिसका अर्थ हम ने अभी कुछ पंक्तियों से पहले आपको समझा दिया है। यह उन सारी धारणाओं को ताज़ा करती रहती है जिन पर आप की मन की पवित्रता, आत्मा का विकास, शील, स्वभाव और आचरण का सुधार टिका हुआ है।

---

१. दिन ढ़लने का समय, तीसरा पहर।

२. दिन का चौथा पहर, वह नमाज़ जो 'ज़ुह्र' के बाद थोड़ा दिन रह जाने पर पढ़ी जाती है।

३. रात का पहला पहर, रात का अन्धकार। वह नमाज़ जो 'मग़रिब' का समय समाप्त होने के पश्चात् पढ़ी जाती है। —अनुवादक

विचार कीजिए, 'वुज़ू'[1] में आप उस तरीके को क्यों अपनाते हैं जो अल्लाह के रसूल ने बताया है और 'नमाज़' में वे सब चीज़ें क्यों पढ़ते हैं जिनकी शिक्षा अल्लाह के रसूल ने दी है? इसीलिए तो कि आप हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के आज्ञापालन को अनिवार्य समझते हैं। कुरआन को आप जान-बूझ कर ग़लत क्यों नहीं पढ़ते? इसी लिए तो कि आपको उसके ईश्वरीय वाणी होने का विश्वास है। नमाज़ में जो चीज़ें खामोशी के साथ पढ़ी जाती हैं यदि आप उनको न पढ़िए या उसकी जगह कुछ और पढ़ दीजिए तो आपको किसका भय है? कोई मनुष्य तो सुनने वाला नहीं, ज़ाहिर है कि आप यही समझते हैं कि खामोशी के साथ जो कुछ हम पढ़ रहे हैं उसे भी ईश्वर सुन रहा है और हमारी किसी ढकी-छिपी गति विधि से भी वह बेख़बर नहीं, जहां कोई देखने वाला नहीं होता वहां कौन-सी चीज़ आपको नमाज़ के लिए उठाती हैं? वह यही विश्वास तो है कि ईश्वर आपको देख रहा है। नमाज़ के समय आवश्यक-से-आवश्यक कार्य छुड़ा कर कौन-सी चीज़ आपको नमाज़ की ओर ले जाती है? वह यही एहसास तो है कि नमाज़ को ईश्वर ने अनिवार्य किया है, जाड़े में प्रातः काल और गर्मी में दोपहर को और प्रतिदिन सायंकाल के दिलचस्प मनोरंजनों में 'मग़रिब' (सूर्यास्त) के समय कौन-सी चीज़ आप को नमाज़ पढ़ने के लिए मजबूर कर देती है? वह कर्तव्य-ज्ञान नहीं तो और क्या है? फिर नमाज़ न पढ़ने या नमाज़ में जान-बूझ कर ग़लती करने से आप क्यों डरते हैं? इसीलिए कि आप को ईश्वर का भय है और आप जानते हैं कि एक दिन उसकी अदालत में हाज़िर होना है। आप बताइए कि नमाज़ से बेहतर और कौन-सी ऐसी ट्रेनिंग हो सकती है जो आप को पूरा और सच्चा मुसलमान बनाने वाली हो? मुसलमान

---

१. नमाज़ अदा करने से पूर्व हाथ, पांव, मुंह आदि धोने की क्रिया।

के लिए इससे अच्छा प्रशिक्षण और क्या हो सकता है कि वह प्रतिदिन कई-कई बार ईश्वर का स्मरण, और उसके भय और उस के सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने के विश्वास और अल्लाह की अदालत में पेश होने की धारणा को ताज़ा करता रहे और रोज़ाना कई बार अनिवार्य रूप से अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का अनुसरण करे और प्रातः काल से सायंकाल तक प्रत्येक कुछ घण्टों के पश्चात् उसको कर्तव्यपालन का अभ्यास कराया जाता रहे। ऐसे व्यक्ति से यह आशा की जा सकती है कि जब वह नमाज़ से निवृत्त होकर सांसारिक कार्यों में व्यस्त होगा, तो वहां भी वह ईश्वर से डरेगा और उसके क़ानून का पालन करेगा। और हर गुनाह और पाप के अवसर पर उसे याद होगा कि ईश्वर मुझे देख रहा है। यदि कोई इतनी उच्च कोटि की ट्रेनिंग के पश्चात् भी ईश्वर से न डरे और उसके आदेशों का उल्लंघन करना न छोड़े तो, यह नमाज़ का क़ुसूर नहीं बल्कि स्वयं उस व्यक्ति के विकृत मन का दोष है।

फिर देखिए, अल्लाह ने नमाज़ को जमात के साथ (सामूहिक रूप में) पढ़ने की ताकीद की है और विशेष रूप से सप्ताह में एक बार जुमा (शुक्रवार) की नमाज़ जमात के साथ पढ़नी अनिवार्य कर दी है। यह मुसलमानों में एकता और बन्धुत्व पैदा करने वाली चीज़ है। उनको मिला कर एक मज़बूत जत्था बनाती है। जब वे सब मिलकर एक ही ईश्वर की 'इबादत' करते हैं, एक साथ उठते और बैढते हैं तो आप-से-आप उनके दिल एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और उनमें यह एहसास पैदा हो जाता है कि हम सब भाई-भाई हैं। फिर यही चीज़ उनमें एक सरदार के आज्ञापालन की क्षमता पैदा करती है और उनको नियमितता का पाठ पढ़ाती है। इसी से उनमें आपस की हमदर्दी उत्पन्न हो जाती है, समानता और अपनापन आ जाता है। धनवान् और निर्धन, बड़े और छोटे, उच्च पदाधिकारी

और साधारण चपरासी सब एक साथ खड़े होते हैं, न कोई ऊंची जाति का होता है न कोई नीची जाति का।

यह उन बेशुमार लाभों में से कुछ लाभ हैं जो आपकी नमाज़ से ईश्वर को नहीं बल्कि स्वयं आपको प्राप्त होते हैं। ईश्वर ने आपके लाभ के लिए इस चीज़ को अनिवार्य किया है, और न पढ़ने पर उसकी नाराज़ी इसलिए नहीं है कि आपने उसको कोई हानि पहुंचाई बल्कि इसलिए है कि आपने खुद अपने आपको हानि पहुंचाई। कैसी प्रबल शक्ति नमाज़ के द्वारा ईश्वर आपको दे रहा है और आप उसको लेने से भी जी चुरा रहे हैं। कितनी शर्म की बात है कि आप मुख,से तो ईश्वर के ईश्वरत्व और रसूल (पैग़म्बर) के आज्ञापालन और 'आख़िरत' में अपने कर्मों के उतरदायित्व को मानें और आपका आचरण यह हो कि अल्लाह और रसूल (पैग़म्बर) ने जिस चीज़ को आपके लिए सबसे बढ़कर अनिवार्य किया है उसका पालन न करें। आपकी इस नीति के पीछे दो में से कोई एक चीज़ अवश्य काम कर रही है या तो आपको नमाज़ के अनिवार्य होने से इन्कार है या आप उसे अनिवार्य समझते हैं और फिर उसका पालन करने से बचते हैं। यदि अनिवार्य होने से इन्कार है तो आप कुरआन और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) दोनों को झुठलाते हैं और फिर इन दोनों पर ईमान लाने का झूठा दावा करते हैं और यदि आप उसे अनिवार्य मानकर फिर उसका पालन नहीं करते तो आप बड़े अविश्वसनीय व्यक्ति हैं, आप पर संसार के किसी मामले में भी भरोसा नहीं किया जा सकता। जब आप ईश्वर की ड्यूटी में चोरी कर सकते हैं तो कोई क्या आशा कर सकता है कि मनुष्यों की ड्यूटी में चोरी न करेंगे।

रोज़ा

दूसरी अनिवार्य चीज़ रोज़ा है। यह रोज़ा क्या है? जिस पाठ

को नमाज़ प्रतिदिन पांच बार याद दिलाती है उसे रोज़ा वर्ष में एक बार पूरे महीने तक हर समय याद दिलाता रहता है। रमज़ान[1] आया और सुबह से लेकर शाम तक आपका खाना-पीना बन्द हुआ। 'सहरी'[2] के समय आप खा-पी रहे थे, अचानक अज़ान हुई और आपने तुरन्त हाथ रोक लिया। अब कैसा ही भोजन रुचिकर आगे आये, कैसी ही भूख-प्यास हो, कितनी ही इच्छा हो, आप शाम तक कुछ नहीं खाते। यही नहीं कि लोगों के सामने नहीं खाते, नहीं, एकान्त में भी नहीं जहां कोई देखने वाला नहीं होता, एक बूंद पानी पीना या एक दाना निगल जाना भी आपके लिए असंभव होता है। फिर यह सारी रुकावट एक समय तक ही रहती है। इधर मग़रिब की 'अज़ान' हुई और आप 'इफ़तार'[3] की ओर लपके। आप रात भर बेख़ौफ होकर आप जब और जो चीज़ चाहते हैं खाते हैं। विचार कीजिए, यह क्या चीज़ है? इसकी तह में ईश्वर का भय है, उसके सर्वव्यापी और सर्वज्ञाता होने का विश्वास है, 'आख़िरत' के जीवन और अल्लाह की अदालत पर 'ईमान' है, कुरआन और रसूल (पैग़म्बर) का पूर्ण आज्ञापालन है, कर्त्तव्य का ज़बर्दस्त एहसास है, धैर्य और संकटों के मुक़ाबिले का अभ्यास है, ईश्वर की प्रसन्नता के मुक़ाबले में मन की इच्छाओं को रोकने और दबाने की शक्ति है। प्रत्येक वर्ष 'रमज़ान' का मास आता है ताकि पूरे ही तीस दिन तक ये रोज़े आपको प्रशिक्षित करें और आप में ये समस्त गुण उत्पन्न करने की कोशिश करें ताकि आप पूरे और पक्के मुसलमान बनें, और ये गुण आपको उस 'इबादत' के क़ाबिल बनायें, जो एक मुसलमान को अपने जीवन में हर समय करनी चाहिए।

---

१. वह अरबी महीना जिसमें रोज़ा रखना अनिवार्य है।

२. अरुणोदय से पूर्व की बेला जिसमें कुछ खा-पी लिया जाता है ताकि दिन में रोज़ा रखने में असाधारण कष्ट न हो।

३. कुछ खा-पी कर रोज़ा खोलना। —अनुवादक

फिर देखिए, अल्लाह ने समस्त मुसलमानों के लिए रोज़ा एक ही विशेष महीने में अनिवार्य किया है ताकि सब मिलकर रोज़ा रखें, अलग-अलग न रखें। इसके बेशुमार दूसरे लाभ भी हैं। सारी इस्लामी आबादी में पूरा एक माह पवित्रता का मास होता है, सारे वातावरण पर ईमान, ईश भय और आदेशों का पालन और नैतिक पवित्रता और आचरण-सौन्दर्य छा जाता है। इस वातावरण में बुराइयां दब जाती हैं और नेकियां उभरती हैं। अच्छे लोग नेक कामों में एक-दूसरे की सहायता करते हैं। बुरे लोग बुरे काम करते हुए शर्माते हैं। धनवान् लोगों में ग़रीबों की सहायता की भावना जागृत होती है। ईश्वर के मार्ग में माल ख़र्च किया जाता है। सारे मुसलमान एक हालत में होते हैं। और एक हालत में होना उनमें यह एहसास पैदा करता है कि हम सब एक जमात (समुदाय) हैं। उनमें बंधुत्व, सहानुभूति, और पारस्परिक एकता उत्पन्न करने का एक कारगर उपाय है।

ये सब हमारे ही फ़ायदे हैं। हमें भूखा रखने में ईश्वर का कोई लाभ नहीं। उसने हमारी भलाई के लिए 'रमज़ान' के रोज़े हमारे लिए अनिवार्य किये हैं। बिना किसी उचित कारण के जो लोग रोज़े नहीं रखते वे अपने ऊपर स्वयं ज़ुल्म करते हैं और सबसे अधिक शर्मनाक नीति उनकी है जो रमज़ान में खुल्लमखुल्ला खाते-पीते हैं, वे मानो इस बात की घोषणा करते हैं कि हम मुसलमानों के समुदाय से नहीं हैं। हमको इस्लाम के आदेशों की कोई परवाह नहीं है और हम ऐसे स्वच्छन्द हैं कि जिसको ईश्वर मानते हैं उसके आज्ञापालन से खुल्लमखुल्ला मुंह मोड़ जाते हैं। बताओ जिन लोगों के लिए अपने समुदाय से अलग होना एक आसान बात हो, जिनको अपने सृष्टिकर्ता से बग़ावत करते हुए तनिक शर्म न आए और जो अपने धर्म के सबसे बड़े पेशवा के नियत किये हुए क़ानून को

खुल्लमखुल्ला तोड़ दें, उससे कोई व्यक्ति किस प्रतिज्ञा–पूर्ति, किस सदाचार और विश्वसनीयता, किस कर्त्तव्यपरायणता और क़ानून के पालन की आशा कर सकता है।

ज़कात

तीसरी अनिवार्य चीज़ 'ज़कात' है। अल्लाह ने प्रत्येक मुसलमान धनवान् व्यक्ति के लिए अनिवार्य किया है कि यदि उसके पास कम से कम साढ़े बावन तोला चांदी हो और उसे रखे हुए पूरा एक वर्ष बीत जाये, तो वह उसमें से चालीसवा भाग अपने किसी ग़रीब नातेदार या किसी मुहताज, किसी असहाय निर्धन, किसी नवमुस्लिम, किसी मुसाफ़िर या किसी ऋणग्रस्त व्यक्ति को दे दे[1]

इस प्रकार ईश्वर ने धनवानों की सम्पत्ति में निर्धनों के लिए कम-से-कम ढाई प्रतिशत भाग निश्चित कर दिया है।[2] इससे अधिक यदि कोई कुछ दे तो यह 'एहसान' है जिसका पुण्य और अधिक होगा।

देखिए, यह हिस्सा अल्लाह को नहीं पहुंचता। उसे आपकी किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। परन्तु वह कहता है कि तुम ने यदि प्रसन्नतापूर्वक मेरे लिए अपने किसी ग़रीब भाई को कुछ दिया

१. जकात केवल चांदी में नहीं बल्कि सोने और चांदी और व्यापारिक माल और पशुओं में भी है। इन सब चीज़ों के कितने परिमाण में कितनी 'ज़कात' है, यह आपको 'फ़िक्ह' (धर्म शास्त्र) के ग्रन्थों से मालूम हो सकता है। यहां केवल ज़कात का शुभ हेतु और लाभ समझाना अभीष्ट है। इसलिए केवल चांदी को मिसाल के रूप में बयान किया गया है।

२. यह बात याद रखने योग्य है कि अल्लाह के रसूल सल्ल० ने अपने वंश के लोगों अर्थात् सय्यिदों और हाशिमियों के लिए 'जकात' लेना हराम कर दिया है। सय्यिदों और हाशिमियों के लिए 'ज़कात' देना तो अनिवार्य है, परन्तु 'ज़कात' लेना उनके लिए निषिद्ध है। जो व्यक्ति किसी ग़रीब सय्यिद या हाशिमी की सहायता करना चाहता हो, वह भेंट या उपहार दे सकता है। सदक़ा और जकात नहीं दे सकता।

तो मानो मुझको दिया, उसकी ओर से मैं तुम्हें कई गुना अधिक बदला दूंगा। हां, शर्त यह है कि उसको देकर तुम कोई एहसान न जताओ, उसका अपमान न करो, उससे धन्यवाद की आशा न रखो, यह भी कोशिश न करो कि तुम्हारे इस दान की लोगों में चर्चा हो और लोग तुम्हारी प्रशंसा करें कि अमुक सज्जन बड़े दानी हैं। यदि तुम इन सभी नापाक विचारों से अपने मन को शुद्ध रखोगे और केवल मेरी प्रसन्नता के लिए अपने धन में निर्धनों को हिस्सा दोगे तो मैं अपने में से तुम को वह हिस्सा दूंगा जो कभी समाप्त न होगा।

ईश्वर ने इस 'ज़कात' को भी हमारे लिए उसी प्रकार अनिवार्य किया है जिस प्रकार नमाज़ और रोज़े को अनिवार्य किया है। यह इस्लाम का बहुत बड़ा स्तम्भ है और इसे स्तम्भ इसलिए माना गया है कि यह मुसलमानों में ईश्वर (की प्रसन्नता) के लिए बलिदान और त्याग का गुण पैदा करता है, स्वार्थ, तंगदिली और धन-लोलुपता के बुरे गुण को दूर करता है। धन की पूजा करने वाला और रुपये पर जान देने वाला लोभी और कंजूस व्यक्ति इस्लाम के किसी काम का नहीं। जो व्यक्ति ईश्वर की आज्ञा से अपने गाढ़े पसीने की कमाई बिना किसी निजी स्वार्थ के निछावर कर सकता हो वही इस्लाम के सीधे मार्ग पर चल सकता है। 'ज़कात' मुसलमानों को इस बलिदान और त्याग का अभ्यास कराती है और उसको इस योग्य बनाती है कि ईश्वर के मार्ग में जब माल ख़र्च करने की आवश्यकता हो, तो वह अपने धन को सीने से चिपटाए न बैठा रहे बल्कि दिल खोलकर ख़र्च करे।

'ज़कात' का सांसारिक लाभ यह है कि मुसलमान परस्पर एक-दूसरे की मदद करें। कोई मुसलमान नंगा, भूखा और अपमानित न हो। जो धनवान हैं वे दीन-दुखियों को संभालें और जो निर्धन हैं वे भीख मांगते न फिरें। कोई अपने धन को केवल अपने

भोग-विलास और ठाठ-बाट में न उड़ा दे, बल्कि यह भी याद रखे कि उसमें उसकी जाति के अनाथों और विधवा स्त्रियों और ग़रीबों का भी हक़ है। उसमें उन लोगों का भी हक़ है जो काम करने की योग्यता रखते हैं परन्तु धन के न होने के कारण मजबूर हैं। इसमें उन बच्चों का भी हक़ है जो प्राकृतिक रूप से मस्तिष्क और प्रतिभा साथ लाये हैं परन्तु निर्धन होने के कारण शिक्षा नहीं हासिल कर सकते। इसमें उनका भी हक़ है जो अपाहिज हो गये हैं और कोई काम करने के योग्य नहीं। जो व्यक्ति इस हक़ को नहीं मानता वह ज़ालिम है। इस से बढ़कर क्या जुल्म होगा कि आप अपने पास रुपये के खत्ते के खत्ते भरे बैठे रहें, कोठियों में ऐश करें, मोटरों में चढ़े-चढ़े फिरें और आप की जाति के हज़ारों व्यक्ति रोटियों को तरसते हों और हज़ारों काम के व्यक्ति मारे-मारे फिरें, इस्लाम ऐसी खुदग़र्ज़ी का दुश्मन है। 'काफ़िरों' (अधर्मियों) को उनकी सभ्यता यह सिखाती है कि जो कुछ धन उनके हाथ लगे उस को समेट-समेट कर रखें और उसे ब्याज पर चलाकर आस-पास के लोगों की कमाई भी अपने पास खीच लें, परन्तु मुसलमानों को उनका धर्म यह सिखाता है कि यदि ईश्वर आप को इतनी रोज़ी दे जो आप की आवश्यकता से अधिक हो तो उस को समेट कर न रखिए, बल्कि अपने दूसरे भाइयों को दीजिए ताकि उन की ज़रूरतें पूरी हों और आप की तरह वे भी कुछ कमाने और काम करने योग्य हो जायें।

हज्ज

चौथी अनिवार्य चीज़ 'हज्ज' है। जीवन भर में केवल एक बार इसका पालन आवश्यक है, और वह भी केवल उनके लिए जो मक्का तक जाने का ख़र्च रखते हों।

जहां अब मक्का बसा हुआ है, यहां अब से हज़ारों वर्ष पहले

हज़रत इब्राहीम अ. ने एक छोटा सा घर अल्लाह की 'इबादत' के लिए बनाया था। अल्लाह ने शुद्ध हृदयता और प्रेम का यह सम्मान किया कि उसको अपना घर कहा और कहा कि जिसको हमारी 'इबादत' करनी हो वह इसी घर की ओर मुंह करके 'इबादत' करे और कहा कि हर मुसलमान चाहे वह दुनिया के किसी भाग में हो, यदि सामर्थ्य रखता है, तो जीवन में कम-से-कम एक बार इस घर के दर्शन के लिए आये और उसी प्रेम के साथ हमारे इस घर की परिक्रमा करे; जिस प्रेम के साथ हमारा प्रिय भक्त इब्राहीम करता था। फिर यह भी हुक्म दिया कि जब हमारे घर की ओर आओ तो अपने मन को शुद्ध करो, वासनाओं को रोको, रक्तपात और दुष्कर्म और दुर्वचन से बचो। उसी आदर और नम्रता के साथ आओ जिसके साथ तुम्हें अपने मालिक के दरबार में हाज़िर होना चाहिए। यह समझो कि हम उस सम्राट की सेवा में जा रहे हैं जो धरती और आकाश का शासक है और जिस के सम्मुख समस्त मनुष्य भिखारी हैं। इस नम्रता के साथ जब आओगे और स्वच्छहृदयता के साथ हमारी 'इबादत' करोगे तो हम तुम्हें अपनी रहमतों से सम्पन्न कर देंगे।

एक पहलू से देखिए तो 'हज्ज' सबसे बड़ी 'इबादत' है। ईश-प्रेम यदि मनुष्य के हृदय में न हो, तो वह अपने कारोबार को छोड़कर, अपने प्रिय संबंधियों और मित्रों से अलग होकर इतनी लम्बी यात्रा का कष्ट ही क्यों करेगा। इसलिए 'हज्ज' का इरादा स्वयं प्रेम और निष्ठा का प्रमाण है। फिर जब मनुष्य इस यात्रा के लिए निकलता है, तो उसकी हालत आम मुसाफिरों जैसी नहीं होती, इस यात्रा में उसका अधिक ध्यान ईश्वर की ओर रहता है। उसके दिल में उत्साह और उत्कण्ठा बढ़ती चली जाती है। जैसे-जैसे 'काबा' निकट होता जाता है मुहब्बत की आग और अधिक भड़कती है, पाप की अवज्ञा से दिल खुद ब खुद नफ़रत करने लगता

है, पिछले अपराधों पर शर्मिंदगी होती है, आगे के लिए वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह उसको आज्ञापालन का एवं कृपा प्रदान करे। इबादत (उपासना) और ईश्वर के स्मरण और गुणगान में आनंद आने लगता है। 'सजदे'[1] लम्बे-लम्बे होने लगते हैं और देर तक सिर उठाने को जी नहीं चाहता। कुरआन पढ़ता है तो उसमें कुछ आनन्द ही और आता है। रोज़ा रखता है, तो उसकी मिठास ही कुछ और होती है, फिर जब वह हिजाज़ के भू-भाग में प्रवेश करता है तो इस्लाम का समस्त प्रारंभिक इतिहास उसकी आंखों के सामने फिर जाता है, चप्पे-चप्पे पर ईश्वर से प्रेम करने वालों और उसके मन पर प्राण निछावर करने वालों के चिह्न दिखाई देते हैं। वहां की रेत का एक-एक कण इस्लाम की महानता का गवाह है और वहां की प्रत्येक कंकड़ी पुकारती है कि यह है वह धरती जहां इस्लाम उदित हुआ और जहां ईश्वरीय बोल ऊंचा हुआ। इस प्रकार मुसलमान का हृदय ईश-प्रीति और इस्लाम के प्रेम से भर जाता है और वहां से वह ऐसा गहरा प्रभाव लेकर आता है, जो जीवन के अन्तिम क्षण तक हृदय से दूर नहीं होता।

धार्मिक लाभों के साथ अल्लाह ने 'हज्ज' में अनगिनत सांसारिक लाभ भी रखे हैं। 'हज्ज' के कारण, मक्का सम्पूर्ण संसार के लोगों का केन्द्र बना दिया गया है। धरती के प्रत्येक भाग से अल्लाह का नाम लेने वाले एक ही समय में वहां एकत्र हो जाते हैं, एक-दूसरे से मिलते हैं, आपस में इस्लामी प्रेम की स्थापना हो जाती है और यह चिह्न हृदय में अंकित हो जाता है कि मुसलमान चाहे किसी देश और वंश के हों, सब एक-दूसरे के भाई हैं और एक

---

१. झुकना, दंडवत, सिर ज़मीन पर रख देना, चेहरे के बल बिछ जाना। 'सजदा' नमाज़ का एक विशेष अंग है जिसमें मनुष्य ईश्वर की बड़ाई और उसकी महानता के आगे अपना सिर ज़मीन पर रख देता है।

— अनुवादक

जाति हैं, इस कारण 'हज्ज' एक ओर अल्लाह की 'इबादत' है तो इसके साथ ही वह सम्पूर्ण संसार के मुसलमानों की कांफ्रेंस भी है और मुसलमानों की विश्वव्यापी बन्धुत्व में एकता पैदा करने का सबसे बड़ा साधन भी।

इस्लाम की सहायता

अन्तिम अनिवार्य चीज़ जो आपके लिए निश्चित की गई है इस्लाम की सहायता है। यद्यपि यह इस्लाम के स्तम्भों में से नहीं है परन्तु यह इस्लाम की अनिवार्य चीज़ों में से एक महत्वपूर्ण चीज़ है और कुरआन और 'हदीस' में इस पर बहुत ज़ोर दिया गया है।

इस्लाम की सहायता क्या चीज़ है और क्यों इसको अनिवार्य किया गया है? इसको आप एक मिसाल से आसानी से समझ सकते हैं। मान लीजिए एक व्यक्ति आपसे दोस्ती का सम्बन्ध जोड़ता है परन्तु हर परीक्षा के अवसर पर यह साबित होता है कि उसको आपसे कोई सहानुभूति नहीं। वह आपके लाभ और हानि की कोई चिन्ता नहीं करता। जिस काम में आपकी हानि होती है उसको वह अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए बेझिझक कर डालता है। जिस काम में आपका लाभ होता है उसमें साथ देने से वह केवल इसलिए बचता है कि उसमें स्वयं उसका कोई लाभ नहीं। आप पर कोई संकट आये तो वह आपकी कोई सहायता नहीं करता। कहीं आपकी बुराई की जा रही हो तो वह स्वयं बुराई करने वालों में शामिल हो जाता है, या कम-से-कम आपकी बुराई को चुपचाप सुनता है। आपके शत्रु आपके विरुद्ध कोई काम करें तो वह उनके साथ मिल जाता है, या कम-से-कम आपको उनकी दुष्टता से बचाने की तनिक भी कोशिश नहीं करता। बताइए, क्या आप ऐसे व्यक्ति को अपना मित्र समझेंगे? आप निश्चय ही कहेंगे कदापि नहीं, इसलिए

कि वह केवल मुंह से मित्रता का दावा करता है, परन्तु वास्तव में मित्रता उसके मन में नहीं है। दोस्ती का अर्थ तो यह है कि मनुष्य जिसका दोस्त हो उससे उसको प्रेम हो, स्वच्छ हृदय हो, उसका हित चाहे, समय पर उसके काम आये, शत्रुओं के मुकाबले में उसकी सहायता करे, उस की बुराई सुनने को तैयार न हो। यदि ये गुण उसमें नहीं तो वह कपटी है, उसकी दोस्ती का दावा झूठा है।

इस मिसाल द्वारा आप समझ सकते हैं कि जब आप मुसलमान होने का दावा करते हैं, तो आप के लिए क्या चीज़ अनिवार्य होती है। मुसलमान होने का अर्थ यह है कि आपमें इस्लामी स्वाभिमान और ईमानी आत्मसम्मान हो, इस्लाम से प्रेम और अपने मुस्लिम भाइयों के प्रति सच्ची शुभेच्छा हो। आप चाहे संसार का कोई कार्य करें, उसमें इस्लाम का लाभ और मुसलमानों की भलाई सदैव आप के सामने रहे। अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए या अपनी किसी व्यक्तिगत हानि से बचने के लिए कभी कोई ऐसा कार्य न कर बैठें जो इस्लाम के उद्देश्य और मुसलमानों के हित के विरुद्ध हो। प्रत्येक उस कार्य में तन, मन, धन से हिस्सा लीजिए जो इस्लाम और मुसलमानों के लिए लाभकारी हो और हर उस कार्य से अलग रहिए जो इस्लाम और मुसलमानों के लिए नुकसानदेह हो। अपने धर्म और अपने धार्मिक समुदाय के सम्मान को अपना सम्मान समझिए। जिस प्रकार आप स्वयं अपने अपमान का सहन नहीं कर सकते, उसी प्रकार इस्लाम और मुसलमनों के अपमान को भी न सहिए। जिस प्रकार आप स्वयं अपने विरुद्ध अपने शत्रुओं का साथ नहीं देते, उसी प्रकार इस्लाम और मुसलमानों के शत्रुओं का भी साथ न दीजिए। जिस प्रकार आप अपने धन, प्राण और सम्मान की रक्षा के लिए प्रत्येक बलिदान के लिए तैयार हो जाते हैं उसी प्रकार इस्लाम और मुसलमानों की रक्षा के लिए भी प्रत्येक

बलिदान के लिए तैयार रहिए। ये गुण हर उस व्यक्ति में होने चाहिए जो अपने आपको मुसलमान कहता हो, वरना उसकी गणना 'मुनाफ़िकों' (कपटाचारियों) में होगी, और उसका आचरण स्वयं उसके मौखिक दावे को झूठा सिद्ध कर देगा।

इसी इस्लाम-सहायता की एक शाखा वह है जिसको 'शरीअत' (धर्म शास्त्र) की भाषा में 'जिहाद' कहते हैं। 'जिहाद' का शब्दार्थ है किसी काम में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देना। इस अर्थ की दृष्टि से जो व्यक्ति ईश्वर के बोल को ऊंचा करने के लिए रुपये से, मुख से, क़लम से, हाथ-पांव से कोशिश करता है वह भी 'जिहाद' ही करता है, परन्तु विशेषतया 'जिहाद' शब्द उस युद्ध के लिए प्रयोग किया गया है जो समस्त सांसारिक स्वार्थों से हट कर केवल ईश्वर के लिए इस्लाम के शत्रुओं से किया जाये। 'शरीअत' में इस 'जिहाद' को 'फ़र्ज़े किफ़ायः' कहते हैं अर्थात् यह ऐसा अनिवार्य कर्म है जो समस्त मुसलमानों के लिए तो है, परन्तु यदि एक गिरोह इसका पालन कर दे तो बाक़ी लोगों पर से इसके पालन करने का भार उतर जाता है। हां, यदि किसी इस्लामी देश पर शत्रुओं का आक्रमण हो तो इस अवस्था में उस देश के समस्त निवासियों के लिए नमाज़ और रोज़े की तरह अनिवार्य हो जाता है। और वे यदि मुक़ाबले का सामर्थ्य न रखते हों तो, उनके निकट जो मुस्लिम देश स्थित हों वहां के प्रत्येक मुसलमान के लिए अनिवार्य हो जाता है कि जान और माल से उनकी सहायता करे और यदि उनकी मदद से भी शत्रु के आक्रमण को रोका न जा सके तो सम्पूर्ण संसार के मुसलमानों के लिए उनकी सहायता करनी उसी तरह अनिवार्य हो जाती है जिस तरह नमाज़, रोज़ा अनिवार्य है, अर्थात् यदि कोई एक व्यक्ति भी इस कर्तव्य पालन में कोताही करेगा, तो गुनाहगार होगा। इस तरह की हालतों में 'जिहाद' का महत्व नमाज़

और रोज़े से भी अधिक हो जाता है, इसलिए कि वह समय 'ईमान' की परीक्षा का होता है। जो व्यक्ति संकट के समय इस्लाम और मुसलमानों का साथ न दे, उसके 'ईमान' में ही सन्देह है। फिर उसकी नमाज़ किस काम की और उसके रोज़े की क्या कीमत? और यदि कोई भाग्यहीन ऐसा हो कि उस समय इस्लाम और मुसलमानों के विरुद्ध शत्रुओं का साथ दे, तो वह निस्संदेह 'मुनाफ़िक़' (कपटाचारी) है। उसकी नमाज़ और उसका रोज़ा और उसकी 'ज़कात' और उसका 'हज्ज' सब-कुछ बेकार हैं।

छठा अध्याय

'दीन' और 'शरीअत

अब तक हमने आपको जो बातें बताई हैं वे सब 'दीन' की बातें थीं। अब हम हज़रत मुहम्मद सल्ल० की 'शरीअत' (आचार शास्त्र) के विषय में आपसे कुछ कहेंगे, परन्तु सबसे पहले आपको यह समझ लेना चाहिए कि 'शरीअत किसे कहते हैं और 'शरीअत' और 'दीन' में क्या अन्तर है?

'दीन' और 'शरीअत का अन्तर

पिछले अध्यायों में आपको बताया जा चुका है कि सारे नबी (पैग़म्बर) इस्लाम धर्म ही की शिक्षा देते चले आये हैं और इस्लाम धर्म यह है कि आप ईश्वर की सत्ता और उसके गुण और 'आख़िरत' के (दिन मिलने वाले) पुरस्कार या दण्ड पर उसी प्रकार ईमान लायें जिस प्रकार ईश्वर के सच्चे पैग़म्बरों ने शिक्षा दी है। ईश्वर के ग्रन्थों को मानिए और सारे मनमाने तरीके छोड़ कर उसी तरीके को सत्य समझिए जिसकी ओर उनमें मार्ग-प्रदर्शन किया गया है। ईश्वर के पैग़म्बरों के आदेशों का पालन कीजिए और सबको छोड़कर उन्ही का अनुसरण कीजिए। अल्लाह की 'इबादत' में किसी को 'शरीक न कीजिए। इसी ईमान और 'इबादत' का नाम 'दीन' है और यह चीज़ सभी नबियों (पैग़म्बरों) की शिक्षाओं में समान है।

इसके बाद एक चीज़ दूसरी भी है जिसको 'शारीअत' कहते हैं अर्थात् 'इबादत' के तरीक़े, सामाजिक सिद्धान्त, आपस के मामलों और सम्बन्धों के क़ानून, हराम और हलाल (वर्जित व अवर्जित), वैध-अवैध की सीमायें इत्यादि। इन चीज़ों के बारे में ईश्वर ने आरम्भ में विभिन्न युगों और विभिन्न जातियों की अवस्था के अनुसार अपने पैग़म्बरों के पास विभिन्न शारीअतें भेजी थीं, ताकि वे प्रत्येक जाति को अलग-अलग शिष्टता और सभ्यता और नैतिकता की शिक्षा-दीक्षा देकर एक बड़े क़ानून के पालन करने के लिए तैयार करते रहें। जब यह काम पूरा हो गया, तो ईश्वर ने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को वह बड़ा क़ानून देकर भेजा जिसकी समस्त धारायें सम्पूर्ण संसार के लिए हैं। अब 'दीन' (धर्म) तो वही है जो पिछले नबियों (पैग़म्बरों) ने सिखाया था, परन्तु पुरानी शारीअतें मन्सूख़ (निरस्त) कर दी गई हैं और उनकी जगह ऐसी 'शारीअत' कायम की गई है जिसमें समस्त मनुष्यों के लिए 'इबादत' के तरीक़े और सामाजिक सिद्धान्त और आपस के मामलों के क़ानून और हलाल और हराम (अवर्जित और वर्जित) की सीमायें समान हैं।

'शारीअत' के आदेश मालूम करने के साधन

हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की 'शारीअत' के सिद्धान्त और आदेश मालूम करने के लिए हमारे पास दो साधन हैं: एक क़ुरआन और दूसरा 'हदीस'। क़ुरआन के विषय में तो आप जानते हैं कि वह अल्लाह का 'कलाम' (ईश्वरीय वाणी) है और उसका प्रत्येक शब्द ईश्वर की ओर से है। रही 'हदीस' तो इसका मतलब वे बातें हैं जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से हम तक पहुंची हैं। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) का समस्त जीवन क़ुरआन की व्याख्या था। नबी (पैग़म्बर) होने से लेकर २३ वर्ष की अवधि तक आप हर समय

शिक्षा और मार्ग-प्रदर्शन में लगे रहे और अपनी वाणी और अपने व्यवहार से लोगों को बताते रहे कि अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन व्यतीत करने का तरीक़ा क्या है? इस महत्वपूर्ण जीवन में सहाबी[1] पुरुष और स्त्रियां और स्वयं हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के प्रिय नातेदार और आपकी पत्नियां सब-के-सब आप की हर बात को ध्यान से सुनते थे, हर काम पर निगाह रखते थे और हर मामले में जो उन्हें पेश आता था, आप से शरीअत का आदेश मालूम करते थे। कभी आप कहते अमुक कार्य करो और अमुक कार्य न करो, जो लोग मौजूद होते वे इस आदेश को याद कर लेते थे और उन लोगों को सुना देते थे जो इस अवसर पर मौजूद न होते थे। इसी प्रकार कभी आप कोई काम किसी विशेष ढंग से किया करते थे, देखने वाले उसको भी याद रखते थे और न देखने वालों से बयान कर देते थे कि आपने अमुक कार्य अमुक तरीक़े से किया था। इसी प्रकार कभी कोई व्यक्ति आप के सामने कोई काम करता तो आप या तो उस पर चुप रहते, या प्रसन्नता प्रकट करते या रोक देते थे। इन सब बातों को भी लोग सुरक्षित रखते थे। ऐसी जितनी बातें 'सहाबी' पुरुषों और स्त्रियों से लोगों ने सुनीं; उनको कुछ लोगों ने याद कर लिया और कुछ लोगों ने लिख लिया और यह भी याद कर लिया कि यह सूचना हमें किसके द्वारा पहुंची है। फिर इन सब उल्लेखों को धीरे-धीरे ग्रन्थों में एकत्र कर लिया गया। इस प्रकार 'हदीस' का बड़ा ज़ख़ीरा हो गया, जिसमें विशेष रूप से इमाम मालिक, इमाम बुख़ारी, इमाम मुस्लिम, इमाम तिरमिज़ी, इमाम अबू दाउद, इमाम नसई और इमाम इब्न माजह (इन सब पर ईश्वर की दया हो) के ग्रन्थ अधिक प्रमाणिक समझे जाते हैं।

---

१. हज़रत मुहम्मद सल्ल० के साथी।

फ़िक़्ह

क़ुरआन और 'हदीस' के आदेशों पर सोच-विचार करके कुछ धर्मज्ञ महापुरुषों ने आम लोगों की सुविधा के लिए विस्तारपूर्वक नियम और क़ानून बना दिये हैं, जिनको 'फ़िक़्ह' कहा जाता है। इस कारण कि हर व्यक्ति क़ुरआन की तमाम बारीक बातों को नहीं समझ सकता और न हर व्यक्ति के पास 'हदीस' का ऐसा ज्ञान है कि वह स्वयं 'शरीअत' के आदेश मालूम कर सके, इसलिए जिन धर्मज्ञ महान् व्यक्तियों ने वर्षों के परिश्रम और सोच-विचार और खोज के पश्चात् 'फ़िक़्ह' को संकलित किया है उनके आभार से संसार के मुसलमान कभी भारमुक्त नहीं हो सकते। यह उन्हीं के परिश्रम का परिणाम है कि आज करोड़ों मुसलमान बिना किसी कठिनाई के 'शरीअत' का पालन कर रहे हैं। और किसी को ईश्वर और रसूल (पैग़म्बर) के आदेश मालूम करने में दिक़्क़त नहीं होती।

आरम्भ में बहुत से महान् व्यक्तियों ने 'फ़िक़्ह' को अपने-अपने ढंग से संकलित किया था, परन्तु धीरे-धीरे चार 'फ़िक़्हें' संसार में बाक़ी रह गईं और संसार के मुसलमान अधिकतर इन ही का पालन करते हैं।

१. इमाम अबू हनीफ़ह की 'फ़िक़्ह' जिसके संकलन में इमाम अबू यूसुफ़ और इमाम मुहम्मद और इमाम ज़ुफ़र और ऐसे ही कुछ और बड़े-बड़े विद्वानों की सम्मति भी शामिल थी। इससे 'हनफ़ी फ़िक़्ह' कहा जाता है।
२. इमाम मालिक की फ़िक़्ह, यह 'फ़िक़्हे मालिकी' के नाम से मशहूर है।
३. इमाम शाफ़ई की फ़िक़्ह, यह 'फ़िक़्हे शाफ़ई' कहलाती है।

४. इमाम अहमद बिन हम्बल की फिक्ह इसको 'फ़िक्हे हम्बली' कहते हैं।[1]

ये चारों 'फ़िक्हें' अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के बाद दो सौ वर्ष के अन्दर-अन्दर संकलित हो गई थीं। इन (फ़िक्हों) में जो मतभेद पाए जाते हैं वे सर्वथा स्वभाविक हैं। कुछ आदमी जब किसी मामले की खोज करते हैं या किसी बात को समझने की कोशिश करते हैं, तो उनकी खोज और समझ में थोड़ा-बहुत मतभेद अवश्य होता है, परन्तु समस्त मुसलमान इन चारों 'फ़िक्हों' को सत्य मानते हैं, क्योंकि इनके संकलनकर्त्ता सत्य-प्रिय और शुभ संकल्प वाले और मुसलमानों का हित चाहने वाले महान लोग थे।

हां, यह जाहिर है कि एक विषय में एक ही तरीके का पालन

---

१. हज़रत अबू हनीफा सन् ८० हि० (६९९ ई०) में पैदा हुए, आपका देहान्त १५० हि० में (७६७ ई०) में हुआ। इस फ़िक्ह के मानने वाले अधिकतर तुरकी, पाकिस्तान, भारत, अफग़ानिस्तान, ट्रांसजोर्डन (Transjordan), इण्डोचीन, चीन, सोवियत संघ में पाये जाते हैं।

हज़रत मालिक बिन अनस सन् ९३ हि० (७१४ ई०) में पैदा हुए, आपका देहान्त १७९ हि० (७९८ ई०) में हुआ। इस फ़िक्ह के मानने वाले विशेष रूप से मराकश, अलजीरिया, ट्यूनिस, सूडान, कुवैत और बहरैन में पाये जाते हैं।

हज़रत मुहम्मद बिन इदरीस अल-शाफ़ई सन् १५० हि० (७६७ ई०) में पैदा हुए और देहान्त सन् २४० हि० (८५४ ई०) में हुआ। आपके अनुयायी अधिकतर फलस्तीन, लेबनान, मिस्र, इराक, सऊदी अरब, यमन और इण्डोनेशिया में रहते हैं।

हज़रत इमाम अहमद बिन हम्बल सन् १६४ हि० (७८० ई०) में पैदा हुए। आपका देहान्त सन् २४१ हि० (८५५ ई०) में हुआ। आपकी फ़िक्ह का पालन करने वाले अधिकतर सऊदी अरब, लेबनान और सीरिया में रहते हैं।

—अनुवादक

किया जा सकता है, चार विभिन्न तरीकों का पालन नहीं किया जा सकता, इसलिए अधिकतर विद्वान् यह कहते हैं कि मुसलमानों को इन चारों में से किसी एक का अनुसरण करना चाहिए। इनके अतिरिक्त विद्वानों का एक गिरोह ऐसा भी है जो यह कहता है कि किसी विशेष 'फ़िक्ह' के अनुसार आचरण करने की आवश्यकता नहीं है। ज्ञानवान् व्यक्तियों को सीधे कुरआन और 'हदीस' से आदेश मालूम करने चाहिएं और जो लोग ज्ञानवान् न हों उन्हें चाहिए कि जिस विद्वान् पर भी उनका विश्वास हो, उसका अनुसरण करें। ये लोग 'अहले हदीस' कहलाते हैं और ऊपर के चारों गिरोहों की तरह ये भी सत्य पर हैं।

तसव्वुफ़

'फ़िक्ह' का सम्बंध मनुष्य के प्रत्यक्ष आचरण से है। वह केवल यह देखती है कि आपको जैसा और जिस तरह का हुक्म दिया गया था उसका आपने पालन किया या नहीं। यदि पालन किया तो 'फ़िक्ह' इससे कुछ बहस नहीं करती कि आपके मन की क्या हालत थी। मनोदशा पर जो चीज़ विचार करती है, उसका नाम 'तसव्वुफ़' है[१] जैसे आप नमाज़ पढ़ते हैं। इस इबादत में 'फ़िक्ह' केवल यह देखती है कि आपने 'वुज़ू' ठीक किया है, 'काबा' की ओर मुंह करके खड़े हुए हैं, नमाज़ के सभी 'अरकान' (अंगों) का पालन किया, जो चीज़ें नमाज़ में पढ़ी जाती हैं, उन सबको पढ़ लिया है और जिस समय जितनी 'रकअतें' निश्चित की गई हैं, ठीक उसी समय उतनी ही रकअतें पढ़ी हैं। जब ये सब आपने कर दिया तो 'फ़िक्ह'

---

१. कुरआन में इस चीज़ का नाम 'तज़कियः' (आत्मा की शुद्धता एवं विकास) और 'हिकमत' (तत्वदर्शिता, Wisdom) है। 'हदीस' में इसे 'एहसान' (सौन्दर्य-साधना) कहा गया है और बाद में लोगों ने यह चीज़ 'तसव्वुफ़' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

की दृष्टि से आपकी नमाज़ पूरी हो गई, परन्तु 'तसव्वुफ' यह देखता है कि इस 'इबादत' में आपके मन की क्या हालत रही। आप ईश्वर की ओर प्रवृत्त हुए या नहीं? आपका मन सांसारिक विचारों से 'पवित्र' हुआ या नहीं? आपके दिल में ईश्वर का भय और उसके सर्वव्यापी और सर्वज्ञ होने का विश्वास और केवल उसी की प्रसन्नता चाहने का भाव उत्पन्न हुआ या नहीं? इस नमाज़ ने आपकी आत्मा को कितना पवित्र किया? आपके आचरण और स्वभाव में कहां तक सुधार हुआ? आपको किस हद तक सच्चा और पक्का क्रियाशील मुसलमान बना दिया? ये समस्त बातें जो नमाज़ के वास्तविक उद्देश्य से सम्बन्ध रखती हैं, जितनी अधिक पूर्णता के साथ प्राप्त होंगी। 'तसव्वुफ' की नज़र में आपकी नमाज़ उतनी ही अधिक पूर्ण होगी और इनमें जितनी कमी होगी उसी के अनुसार वह आपकी नमाज़ को अपूर्ण मानेगा। इस प्रकार 'शरीअत' के जितने आदेश हैं उन सबमें 'फिक़्ह' केवल यह देखती है कि आपको जो आदेश जिस रूप में दिया गया था, उसी रूप में आपने उसका पालन किया या नहीं? और 'तसव्वुफ' यह देखता है कि उस आदेश के पालन करने में आपके अन्दर स्वच्छ हृदयता, शुभ संकल्प और सच्चा आज्ञापालन कितना था।

इस अन्तर को आप एक मिसाल से भली-भांति समझ सकते हैं। जब कोई व्यक्ति आपसे मिलता है तो आप उसे दो हैसियत से देखते हैं। एक हैसियत तो यह होती है कि वह ठीक और स्वस्थ है या नहीं। अन्धा, लंगड़ा, लूला तो नहीं है? सुन्दर है या कुरूप, अच्छे कपड़े पहने हुए है या मैला-कुचैला है? दूसरी हैसियत यह होती है कि उसकी मनोवृत्ति और आचरण कैसा है? उसका स्वभाव कैसा है? उसकी बुद्धि और समझ-बूझ कैसी है? वह विद्वान है या अज्ञानी? अच्छा है या बुरा? इनमें पहली निगाह मानो 'फिक़्ह' की

निगाह है और दूसरी निगाह मानो 'तसव्वुफ़' की निगाह है। मित्रता के लिए जब आप किसी व्यक्ति को पसंद करना चाहेंगे तो उसके व्यक्तित्व के दोनों पहलुओं को देखेंगे। आप चाहेंगे कि उसका बाहरी रूप भी अच्छा हो और भीतर भी अच्छा हो। इसी प्रकार इस्लाम में भी पसन्दीदा जीवन वही है जिसमें 'शरीअत' के आदेशों का पालन बाहरी रूप से भी ठीक हो और भीतरी रूप से भी। जिस व्यक्ति का बाहरी आज्ञापालन ठीक है, परन्तु भीतरी आज्ञापालन के भाव से रहित है उसके कर्म की मिसाल ऐसी है जैसे कोई व्यक्ति ख़ूबसूरत हो परन्तु मुर्दा हो और जिस व्यक्ति के कर्म में समस्त आंतरिक गुण पाये जाते हों, परन्तु बाहरी आज्ञापालन ठीक न हो उसकी मिसाल ऐसी है जैसे कोई व्यक्ति बहुत सज्जन और अच्छा हो परन्तु बदसूरत और अपाहिज हो।

इस मिसाल से आपको 'फ़िक्ह' और 'तसव्वुफ़' का पारस्परिक सम्बन्ध भी मालूम हो गया होगा। परन्तु अफ़सोस की बात है कि बाद के ज़मानों में ज्ञान और नैतिकता की अवनति से जहां अन्य बहुत सी ख़राबियां पैदा हुईं। 'तसव्वुफ़' के पवित्र स्रोत को भी गन्दा कर दिया गया। लोगों ने विभिन्न प्रकार के ग़ैर-इस्लामी दर्शन गुमराह जातियों से सीखे और उनको 'तसव्वुफ़' के नाम से इस्लाम में दाख़िल कर दिया। अजीब-अजीब क़िस्म की धारणाओं और रीतियों को 'तसव्वुफ़' कहा गया जिनका कोई आधार क़ुरआन और 'हदीस' में नहीं पाया जाता। फिर इस तरह के लोगों ने धीरे-धीरे अपने आपको 'शरीअत' की पाबन्दी से भी आज़ाद कर लिया। वे कहते हैं 'तसव्वुफ़' का 'शरीअत' से कोई वास्ता नहीं यह मार्ग ही दूसरा है। 'सूफ़ी' को क़ानून और नियम के पालन से क्या लेना-देना। इस प्रकार की बात प्रायः अज्ञानी सूफ़ियों से सुनने में आती हैं, परन्तु वास्तव में बिल्कुल ग़लत है। इस्लाम में

किसी ऐसे 'तसव्वुफ़' की गुंजाइश नहीं है जो 'शरीअत' के आदेशो से असम्बद्ध हो। किसी सूफ़ी को यह हक नहीं है कि 'नमाज़', रोज़े, हज्ज और 'जकात' की पाबन्दी से आज़ाद हो जाए। कोई सूफ़ी उन क़ानूनों के विरुद्ध आचरण करने का हक़ नहीं रखता जो सामाजकिता, जीविका, नैतिकता, पारस्परिक मामलों और अधिकार, कर्तव्यों, हलाल और हराम (वर्जित व अवर्जित) की सीमाओं के सम्बन्ध में ईश्वर और रसूल (पैग़म्बर) ने बताए हैं। कोई ऐसा व्यक्ति जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सच्चा पैरवी न करता हो और आपके निश्चित किये हुए तरीक़े का पाबन्द न हो "मुसलमान सूफ़ी" कहलाये जाने का हक ही नहीं रखता। 'तसव्वुफ़' तो वास्तव में अल्लाह और रसूल के सच्चे प्रेम बल्कि आसक्ति का नाम है। और उत्कट प्रेम चाहता है कि ईश्वर के आदेश और उसके रसूल की पैरवी से तनिक भी न हटा जाये। अतः इस्लामी तसव्वुफ़ 'शरीअत' से अलग कोई चीज़ नहीं है, बल्कि 'शरीअत' के आदेशों का अत्यन्त निष्ठा और स्वच्छ हृदयता के साथ पालन करने और आज्ञापालन में ईश-प्रेम और उसके भय का तत्व भर देने ही का नाम 'तसव्वुफ़' है।

सातवां अध्याय

'शरीअत' के आदेश

इस अन्तिम अध्याय में हम 'शरीअत' के सिद्धान्त और मुख्य-मुख्य नियमों का वर्णन करेंगे जिस से आप को मालूम होगा कि इस्लामी 'शरीअत' मानव जीवन को किस प्रकार एक उत्तम ज़ाब्ते का पाबन्द बनाती है और इस ज़ाब्ते में कैसी-कैसी हिकमतें (तत्वदर्शिता) रखी गई हैं।

'शरीअत' के सिद्धान्त

आप अपनी हालत पर विचार करेंगे तो ज्ञात होगा कि संसार में आप बहुत सी शक्तियां लेकर आये हैं और हर शक्ति चाहती है कि उससे काम लिया जाये। आप में बुद्धि है, संकल्प है, इच्छा है, देखने की शक्ति है, सुनने की शक्ति है, आस्वाद शक्ति है, हाथ-पांव की शक्ति है, घृणा और क्रोध है, अभिरुचि और प्रेम है, भय और लालच है इनमें से कोई चीज़ भी बेकार नहीं। हर चीज़ आपको इसलिए दी गई है कि आपको उस की आवश्यकता है। संसार में आप का जीवन और जीवन की सफलता इसी पर अवलम्बित है कि आप की मनोवृत्ति और प्रकृति जो कुछ मांगती है उसको पूरा कीजिए। और यह उसी समय हो सकता है जबकि आप उन समस्त शक्तियों से काम लें जो ईश्वर ने आप को दी हैं।

फिर आप देखेंगे कि जितनी शक्तियां आप के अन्दर रखी गयी हैं, उनसे काम लेने के साधन भी आपको दिये गये हैं। सबसे पहले

तो आपका अपना शरीर है, जिसमें समस्त आवश्यक उपकरण पाये जाते हैं। इसके बाद आपके चारों ओर का संसार है, जिसमें हर प्रकार के बेशुमार साधन फैले हुए हैं। आपकी सहायता के लिए स्वयं आपके सहजातीय इंसान पाये जाते हैं। आपकी सेवा के लिए पशु हैं, वनस्पतियां और जड़ पदार्थ हैं। भूमि और जल और वायु और ताप, प्रकाश और इसी प्रकार की असंख्य और अपरिमेय चीज़ें हैं। ईश्वर ने इन सबको इसीलिए उत्पन्न किया है कि आप इनसे काम लें और जीवन-यापन में इनसे सहायता प्राप्त करें।

अब एक दूसरे दृष्टिकोण से देखिए, आपको जो शक्तियां दी गई हैं वे लाभ के लिए दी गई हैं, हानि के लिए नहीं दी गईं। इनके इस्तेमाल का उचित ढंग वही हो सकता है जिससे केवल लाभ हो और हानि या तो बिल्कुल न हो या यदि हो भी तो कम-से-कम जो अवश्यम्भावी हो। इसके सिवा जितने ढंग हैं, बुद्धि कहती है कि वे सब अनुचित होने चाहिएं। जैसे, यदि आप कोई ऐसा काम करें जिससे स्वयं आपको हानि पहुंचे तो यह भी अनुचित होगा। यदि आप अपनी किसी शक्ति से ऐसा काम लें जिससे दूसरे मनुष्यों को हानि पहुंचे तो यह भी अनुचित होगा। आप किसी शक्ति को इस प्रकार इस्तेमाल कीजिए कि जो साधन और उपकरण आपको दिये गये हैं वे व्यर्थ ही नष्ट हों तो यह भी अनुचित होगा। आपकी बुद्धि स्वयं इस बात की गवाही दे सकती है कि हानि चाहे किसी प्रकार की हो उससे बचना चाहिए और उसको सहन किया जा सकता है, तो केवल इस सूरत में जबकि उससे बचना या तो संभव ही न हो या उसके मुकाबले में कोई बहुत बड़ा फायदा हो।

इसके बाद आगे बढ़िए। संसार में दो प्रकार के मनुष्य पाये जाते हैं। एक तो वे जो जान-बूझकर अपनी कुछ शक्तियों का इस तरह इस्तेमाल करते हैं जिनसे या तो स्वयं उन्हीं की कुछ अन्य शक्तियों

को हानि पहुंच जाती है, या दूसरे मनुष्यों को पहुंचती है, या उनके हाथों वे चीज़ें व्यर्थ नष्ट होती हैं जो केवल लाभ उठाने के लिए उनको दी गई हैं न कि बरबाद करने के लिए। दूसरे लोग वे हैं जो जान-बूझकर तो ऐसा नहीं करते, परन्तु अज्ञान के कारण ऐसी भूलें उनसे हो जाती हैं। पहले प्रकार के लोग शरारती हैं और उनके लिए ऐसे क़ानून और ज़ाब्ते की आवश्यकता है, जो उनको क़ाबू में रखें। और दूसरे प्रकार के लोग अज्ञानी हैं और उनके लिए ऐसे ज्ञान की आवश्यकता है जिससे उन्हें अपनी शक्तियों के प्रयोग का उचित ढंग से ज्ञान हो जाये।

अल्लाह ने जो 'शरीअत' अपने पैग़म्बर के पास भेजी है वह इसी आवश्यकता को पूरी करती है। वह आपकी शक्ति को नष्ट करना नहीं चाहती, न किसी इच्छा को मिटाना चाहती है, न किसी भावना को ख़त्म करना चाहती है। वह आपसे यह नहीं कहती कि संसार को छोड़ दो, जंगलों और पहाड़ों में जाकर रहो, भूखे मरो और नंगे फिरो, मन को मार कर अपने-आपको कष्ट पहुंचाओ और सांसारिक सुख और आराम को अपने ऊपर हराम कर लो। कदापि नहीं, यह ईश्वर की बनायी हुई 'शरीअत' है और ईश्वर वही है जिसने यह संसार मनुष्य के लिए बनाया है। वह अपनें इस कारख़ाने को मिटाना या शोभाहीन करना कैसे चाहेगा। उसने मनुष्य में कोई शक्ति बेकार और अनावश्यक नहीं रखी, न धरती और आकाश में कोई चीज़ इसलिए पैदा की है कि उससे कोई काम न लिया जाये। वह तो स्वयं यह चाहता है कि दुनिया का यह कारख़ाना पूर्ण सुन्दरता के साथ चले। प्रत्येक शक्ति से मनुष्य पूरा-पूरा काम ले, संसार की हर चीज़ से फ़ायदा उठाये और समस्त साधनों का इस्तेमाल करे जो धरती और आकाश में संचित किये गये हैं, परन्तु इस प्रकार कि अज्ञान या शरारत से न स्वयं अपने को हानि पहुंचाये,

न दूसरों को नुक़सान पहुंचाये। ईश्वर ने 'शरीअत' के सब ज़ाब्ते इसी ध्येय से बनाये हैं। जितनी चीज़ें मनुष्य के लिए हानि पहुंचाने वाली हैं उन सबको 'शरीअत' में हराम (वर्जित) कर दिया गया है और जो चीज़ें लाभप्रद हैं उन्हें 'हलाल' (अवर्जित') कहा गया है। जिन कामों से मनुष्य स्वयं अपने को या दूसरों को हानि पहुंचाता है उनका 'शरीअत' निषेध करती है और ऐसे सब कामों की इजाज़त देती है जो उसके लिए लाभकारी हों और किसी के लिए हानिकारी न हों। उसके सारे क़ानून इसी सिद्धान्त पर बने हैं कि मनुष्य को संसार में समस्त इच्छायें और आवश्यकताएं पूरी करने और अपने फ़ायदे के लिए हर प्रकार की कोशिश करने का हक़ है, परन्तु इस हक़ से उसको इस प्रकार फ़ायदा उठाना चाहिए कि अज्ञान अथवा शरारत से वह दूसरों के हक़ को न मारे, बल्कि जहां तक संभव हो, दूसरों का सहयोगी और सहायक हो। फिर जिन कामों में एक पहलू फ़ायदे का दूसरा पहलू नुक़सान का हो उनमें 'शरीअत' का सिद्धान्त यह है कि बड़े फ़ायदे के लिये छोटे नुक़सान को क़ुबूल किया जाये और बड़े नुक़सान से बचने के लिए छोटे फ़ायदे को छोड़ दिया जाए।

प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक युग में, हर चीज़ और हर काम के विषय में यह नहीं जानता कि उसमें क्या फ़ायदा और क्या नुक़सान है, इसलिए ईश्वर ने जिसके ज्ञान से विश्व का कोई राज़ छिपा हुआ नहीं है, मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के लिए एक ठीक ज़ाब्ता बना दिया है। इस ज़ाब्ते की बहुत सी भलाइयां अब से शताब्दियों पहले लोगों की समझ में न आयी थीं, परन्तु अब ज्ञान की उन्नति ने उन पर से परदा उठा दिया है। बहुत सी गुप्त भलाइयों को अब भी लोग नहीं समझते हैं, परन्तु जितनी-जितनी ज्ञान की उन्नति होगी, वे स्पष्ट होती जायेंगी। जो लोग ख़ुद अपने अपूर्ण ज्ञान और अपनी अधूरी बुद्धि पर भरोसा रखते हैं वे शताब्दियों तक भूलें करने और ठोकरें

खाने के बाद अन्त में इसी 'शरीअत' के किसी-न-किसी नियम को अपनाने पर मजबूर हुए हैं, परंतु जिन लोगों ने अल्लाह के रसूल पर भरोसा किया वे अज्ञान और अनभिज्ञता की हानियों से सुरक्षित हैं, क्योंकि उन्हें चाहे गुप्त भलाइयों का ज्ञान हो या न हो वे प्रत्येक अवस्था में केवल अल्लाह के रसूल (सल्ल०) पर विश्वास करके एक ऐसे कानून का पालन करते हैं जो शुद्ध और यथार्थ ज्ञान के अनुसार बनाया गया है।

चार प्रकार के हक

'शरीअत' की दृष्टि से हर इंसान पर चार प्रकार के हक होते हैं। एक अल्लाह का हक, दूसरे स्वयं उसकी अपनी इन्द्रियों और शरीर का हक, तीसरे लोगों का हक, चौथे उन चीज़ों का हक जिनको अल्लाह ने उसके अधिकार में दिया है ताकि वह उनसे काम ले और फ़ायदा उठाये। इन्हीं चार प्रकार के हक को समझना और ठीक-ठीक अदा करना एक सच्चे मुसलमान का कर्तव्य है। 'शरीअत' इन सब हकों को अलग-अलग बयान करती है और उनको अदा करने के लिए ऐसे तरीके निश्चित करती है कि एक साथ सब हक अदा हों और यथासंभव कोई हक मारा न जाये।

अल्लाह का हक

अल्लाह का सबसे पहला हक यह है कि मनुष्य केवल उसी को ईश्वर माने और उसके साथ किसी को शरीक न करे। यह हक 'ला इलाह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं) पर 'ईमान' लाने से अदा हो जाता है जैसा कि हम पहले आपको बता चुके हैं।

अल्लाह का दूसरा हक यह है कि जो मार्ग-दर्शन और आदेश उसकी ओर से आये उसको सच्चे दिल से माना जाये। यह हक

'मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह' (मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं) पर 'इमान' लाने से अदा होता है और इसका विस्तारपूर्वक वर्णन पहले आ चुका है।[1]

अल्लाह का तीसरा हक यह है कि उसका आज्ञापालन किया जाये। यह हक उस क़ानून पर चलने से अदा होता है जो ईश्वरीय ग्रंथ और रसूल की 'सुन्नत' में बयान हुआ है। इसकी ओर भी हम संकेत कर चुके हैं।[2]

अल्लाह का चौथा हक यह है कि उसकी 'इबादत' की जाए। इसी हक को अदा करने के लिए वे चीज़ें अनिवार्य की गई हैं जिनका उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है।

इस हक को सब हकों में प्रधानता प्राप्त है इसलिए इसको अदा करने से दूसरे हक का बलिदान किसी-न-किसी सीमा तक आवश्यक है। जैसे नमाज़, रोज़ा आदि अनिवार्य चीज़ों को अदा करने में मनुष्य स्वयं अपनी इन्द्रियों और शरीर के बहुत से हक कुरबान करता है। नमाज़ के लिए मनुष्य प्रातःकाल उठता है और ठण्डे पानी से 'वुज़ू' करता है। दिन और रात में कई बार अपने आवश्यक कार्यों और दिलचस्प मनोरंजनों को छोड़ता है। 'रमज़ान' में महीना भर भूख-प्यास और इच्छाओं को रोकने का कष्ट सहन करता है। 'जकात' अदा करने में अपने माल के मोह को ईश-प्रेम पर निछावर कर देता है। 'हज्ज' में सफ़र की तकलीफ

---

१. दे० अध्याय ३।

२. दे० अध्याय ४।

'सुन्नत' वास्तव में हजरत मुहम्मद (सल्ल०) के समस्त कथनों, कार्यों और व्यवहारों का नाम है। आपने मार्ग-दर्शन हेतु जो कुछ भी किया वह समस्त मुसलमानों के लिए आदर्श है।

३. दे० अध्याय ५।

और माल की कुरबानी देता है। 'जिहाद' में स्वयं अपने प्राण और धन निछावर कर देता है। इसी प्रकार दूसरे लोगों का हक भी अल्लाह के हक पर थोड़ा-बहुत कुरबान किया जाता है। जैसे नमाज़ में एक नौकर अपने मालिक का कार्य छोड़कर अपने बड़े मालिक की 'इबादत' के लिए जाता है। 'हज्ज' में एक व्यक्ति सारे कारोबार को छोड़कर मक्का की यात्रा करता है और इसका बहुत से लोगों के हक पर असर पड़ता है। 'जिहाद' में मनुष्य केवल अल्लाह के लिए जान लेता और जान देता है। इसी प्रकार बहुत-सी वे चीज़ें भी अल्लाह के हक के लिए निछावर की जाती हैं जो मनुष्य के वश और अधिकार में हैं। जैसे पशुओं की कुरबानी (बलिदान) और धन का व्यय।

परन्तु अल्लाह ने अपने हक के लिए ऐसी सीमायें निश्चित कर दी हैं कि उसके जिस हक को अदा करने के लिए दूसरे हकों की जितनी कुरबानी आवश्यक है उससे अधिक न की जाये। उदाहरण के लिए नमाज़ को लीजिए। ईश्वर ने जिन नमाज़ों को आपके लिए अनिवार्य किया है उनको अदा करने में हर प्रकार की सहूलियत रखी गई है। वुजू के लिए पानी न मिले या बीमार हों तो 'तयम्मुम'[1] कर लीजिए, सफ़र में हों नमाज़ 'क्रस्र' (संक्षिप्त) कर दीजिए, बीमार हों तो बैठकर या लेटकर पढ़ लीजिये। फिर नमाज़ में जो कुछ पढ़ा जाता है वह भी इतना नहीं है कि एक समय की नमाज़ मे कुछ मिनटों से अधिक लगे। शांत समय में मनुष्य चाहे तो पूरी सूरः बक़रः पढ़ ले, परन्तु कारबार के समयों में लम्बी नमाज़ पढ़ने से रोक दिया गया है। फिर अनिवार्य नमाज़ों से बढ़कर यदि कोई व्यक्ति 'नफ़्ल' नमाज़ें पढ़नी चाहे तो ईश्वर उससे खुश होता है,

---

१. अर्थात् पाक मिट्टी पर हाथ मार कर उसे मुंह और हाथ पर फेरना इसका पारिभाषिक नाम 'तयम्मुम' है। यह नमाज़ का आदर और पवित्रता की भावना बाकी रखने की एक उत्तम विधि है। —अनुवादक

परन्तु ईश्वर यह नहीं चाहता कि आप रातों की नींद और दिन का आराम अपने ऊपर हराम कर लें, या अपनी रोज़ी कमाने के समय को नमाज़ें पढ़ने में ही लगा दें, या लोगों के हक़ को नष्ट कर के नमाज़ें पढ़ते चले जायें।

इसी प्रकार रोज़ें में भी हर प्रकार की सुविधायें रखी गई हैं। केवल वर्ष में एक महीने के रोज़े अनिवार्य किये गये हैं, वे भी यात्रा या बीमारी में छोड़े जा सकते हैं। यदि रोज़ेदार बीमार है और जान का भय हो तो रोज़ा तोड़ सकता है। रोज़े के लिए जितना समय निश्चित किया गया है उसमें एक मिनट बढ़ाना भी ठीक नहीं। 'सहरी'[1] के समय अन्तिम समय तक खाने-पीने की आज्ञा है और इफ़तार (पारणा) का समय आते ही फ़ौरन रोज़ा खोलने का आदेश दिया गया है। अनिवार्य रोज़ों के अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति 'नफ़्ल' रोज़ा रखे तो यह और भी ईश्वरीय प्रसन्नता का कारण होगा, परन्तु ईश्वर इसे पसन्द नहीं करता कि आप निरन्तर रोज़े रखते चले जायें और अपने आपको इतना कमज़ोर कर लें कि दुनिया के काम-काज न कर सकें।

'ज़कात' के लिए भी ईश्वर ने कम-से-कम मात्रा निश्चित की है और यह भी उन लोगों के लिए अनिवार्य किया है कि जिनके पास एक निश्चित धन-राशि हो। इससे अधिक यदि कोई व्यक्ति अल्लाह की राह में 'सदक़ा या ख़ैरात करे तो, अल्लाह उससे प्रसन्न होगा, परन्तु ईश्वर यह नहीं चाहता कि आप अपना या अपने परिवार के हक़ क़ुरबान करके सब-कुछ 'सदक़ा' और ख़ैरात में दे डालें और कंगाल होकर बैठ रहें। इसमें भी मध्यम मार्ग अपनाने का आदेश दिया गया है।

---

१. अरुणोदय से पहले का समय।

फिर 'हज्ज' को देखिए। पहले तो यह अनिवार्य उन लोगों के लिए किया गया है जो पथ-सामग्री रखते हों और सफ़र की तकलीफ़ों को सहन करने योग्य हों। फिर इसमें यह आसानी भी रखी गई है कि जीवन में केवल एक बार जब सुविधा हो, जा सकते हैं और यदि रास्ते में युद्ध हो रहा हो या अशान्ति हो जिससे जान के ख़तरे की अधिक आंशका हो तो 'हज्ज' का विचार स्थगित कर सकते हैं। इसके साथ माता-पिता की इजाज़त भी आवश्यक बताई गई है, ताकि बूढ़े माता-पिता को आपके न रहने पर कष्ट न हो। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि अल्लाह ने अपने हक़ में दूसरों के हक़ का कितना ध्यान रखा है।

अल्लाह के हक़ के लिए मानवीय हक़ की सबसे बड़ी क़ुरबानी 'जिहाद' में की जाती है, क्योंकि इसमें मनुष्य अपने प्राण और धन भी ईश्वरीय मार्ग में निछावर करता है और दूसरों के जान और माल को भी भेंट चढ़ा देता है, परन्तु जैसा कि हमने ऊपर आपको बताया है, इस्लाम का सिद्धान्त यह है कि बड़ी हानि से बचने के लिए छोटी हानि का सहन करना चाहिए। इस सिद्धान्त को सामने रखिए और फिर देखिये कि कुछ सौ या कुछ हज़ार या कुछ लाख मनुष्यों की मृत्यु की अपेक्षा कहीं अधिक हानि यह है कि सत्य के मुक़ाबले में असत्य का विकास हो, अल्लाह का 'दीन' (धर्म) 'कुफ़्र' व शिर्क (अधर्म और अनेकेश्वरवाद) और नास्तिकता के मुक़ाबले में दब कर रहे और संसार में गुमराहियां और अनैतिकता फैले, अतः इस बड़ी हानि से बचने के लिए अल्लाह ने मुसलमानों को आज्ञा दी है कि प्राण और धन की बहुत थोड़ी हानि को हमारी प्रसन्नता के लिए सहन कर लो, परन्तु इसके साथ यह भी कह दिया कि जितना रक्तपात आवश्यक है उससे अधिक न करो। बूढ़ों, बच्चों और स्त्रियों और घायल व्यक्तियों और बीमारों पर हाथ न

उठाओ। केवल उन लोगों से लड़ो जो असत्य के पक्ष में तलवार उठाते हैं। शत्रु के देश में अनावश्यक तबाही और बरबादी न फैलाओ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त हो, तो उनके साथ न्याय करो। किसी बात पर उनसे सन्धि हो जाये, तो उसका पालन करो। जब वे सत्य की शत्रुता का परित्याग कर दें, तो लड़ाई बन्द कर दो। इन सब बातों से स्पष्ट है कि अल्लाह का हक़ अदा करने के लिए मानवीय हक़ का जितना बलिदान आवश्यक है उससे अधिक को अवैध कहा गया है।

अपना हक़

अब दूसरे प्रकार के हक़ को लीजिए अर्थात् मनुष्य पर स्वयं उसका अपना और अपने शरीर का हक़।

शायद आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि मनुष्य सबसे बढ़ कर स्वयं अपने ऊपर ज़ुल्म करता है। यह वास्तव में आश्चर्यजनक है भी, क्योंकि प्रत्यक्ष रूप में तो प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि उसको सबसे अधिक अपने-आपसे मुहब्बत है और शायद कोई व्यक्ति भी इस बात को न मानेगा कि वह अपना आप ही शत्रु है, परन्तु आप तनिक विचार करेंगे तो इसकी हक़ीक़त आपको मालूम हो जायेगी।

मनुष्य की एक बड़ी कमज़ोरी यह है कि उस पर जब कोई इच्छा छा जाती है तो वह उसका दास बन जाता है और उसके लिए जान-बूझ कर या बेजाने-बूझे अपने को बहुत-कुछ हानि पहुंचा देता है। आप देखते हैं कि एक व्यक्ति को नशे की लत लग गई तो वह उसके पीछे पागल हो रहा है और स्वास्थ्य की क्षति, रुपये की हानि, सम्मान की हानि, तात्पर्य यह कि हर चीज़ की हानि सहे जाता है। एक दूसरा व्यक्ति खाने का ऐसा रसिया है कि हर तरह की अला-बला खा जाता है और अपनी जान को चोट पहुंचता है।

एक तीसरा व्यक्ति कामेच्छा का दास बन गया है और ऐसी हरकतें कर रहा है जिनका आवश्यक परिणाम उसकी तबाही है। एक चौथे व्यक्ति को आत्मिक विकास की धुन समाई है, तो वह अपनी जान के पीछे हाथ धोकर पड़ गया है, अपने मन की समस्त इच्छाओं को दबा रहा है, अपने शरीर की आवश्कताओं को पूरा करने से इन्कार कर रहा है, विवाह से बचता है, खाने-पीने से परहेज़ करता है, कपड़े पहनने से इन्कार करता है यहां तक कि सांस भी लेना नहीं चाहता, जंगलों और पहाड़ों में जा बैठता है और यह समझता है कि संसार का निर्माण उसके लिए नहीं हुआ है। हमने मिसाल के तौर पर मनुष्य की अतिप्रियता के ये कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, नहीं तो इसके अनगिनत रूप हैं जिन्हें हम रात-दिन अपने चारों ओर देख रहे हैं।

इस्लामी 'शरीअत' मानव-भलाई और कल्याण चाहती है, इसलिए. वह उसको सचेत करती है।

"तेरे ऊपर स्वयं तेरे अपने भी हक़ हैं"।

वह उन सारी चीज़ों से उसको रोकती है जो उसको नुक़सान पहुंचाने वाली हैं, जैसे शराब, ताड़ी, अफ़ीम तथा अन्य मादक वस्तुएं, सुअर का मांस, हिंसक और ज़हरीले जानवर, अपवित्र जानवर, रक्त और मुरदार जानवर आदि, क्योंकि मनुष्य के स्वास्थ्य, स्वभाव, आचरण, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों पर इन चीज़ों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इनके मुक़ाबले में वह पवित्र और लाभकारी वस्तुओं को उसके लिए हलाल (वैध) करती है और उससे कहती है कि तू अपने शरीर को पवित्र खाद्य पदार्थ से वंचित न रख, क्योंकि तेरे शरीर का तेरे ऊपर हक़ है।

वह उसको नंगा रहने से रोकती है और आज्ञा देती है कि अल्लाह ने तेरे शरीर के लिए जो शोभा (वस्त्र) उतारी है उससे

फ़ायदा उठा, और अपने शरीर के उन अंगों को ढका हुआ रख, जिन्हें खोलना बेशर्मी है।

वह उसको रोज़ी कमाने की आज्ञा देती है और उससे कहती है कि बेकार न बैठ, भीख न मांग, भूखा न मर। ईश्वर ने जो शक्तियां तुझे दी हैं उनसे काम ले और जितने साधन धरती और आकाश में तेरे पालन-पोषण और सुविधा और आराम के लिए उत्पन्न किये गये हैं उनको उचित उपायों से प्राप्त कर।

वह उसको कामेच्छा को दबाने से रोकती है और उसे आज्ञा देती है कि अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिए विवाह कर।

वह उसको इन्द्रिय-दमन से रोकती है और उससे कहती है कि तू आराम और सुविधा और जीवन-आनन्द को अपने लिए 'हराम' (वर्जित) न कर ले। यदि तू आत्मिक विकास और ईश्वर की निकटता और 'आख़िरत' (परलोक) की नजात चाहता है तो इसके लिए दुनिया छोड़ने की आवश्यकता नहीं, इसी संसार में पूर्णतया गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए ईश्वर को याद करना और उसकी अवज्ञा से डरना और उसके बनाये हुए क़ानून का पालन करना लोक-परलोक की समस्त सफलताओं का साधन है।

वह आत्महत्या को 'हराम' (वर्जित) करती है और उससे कहती है कि तेरी जान वास्तव में ईश्वर की दौलत है और यह अमानत तुझे इसलिए दी गई है कि तू ईश्वर की निश्चित की हुई अवधि तक उससे काम ले, इसलिए नहीं कि तू उसे नष्ट कर दे।

लोगों का हक़

एक ओर 'शरीअत' (धर्म-शास्त्र) ने मनुष्य को अपनी आत्मा और शरीर का हक़ अदा करने का आदेश दिया है तो दूसरी ओर यह प्रतिबन्ध भी रखा है कि इन हक़ों को अदा करने में वह कोई

ऐसा ढंग न अपनाये जिससे दूसरे लोगों के हक़ को चोट पहुंचे, क्योंकि इस प्रकार अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरा करने से मनुष्य की अपनी आत्मा भी मलिन होती है और दूसरों को भी तरह-तरह की हानियां पहुंचती हैं। इसीलिए 'शारीअत' ने चोरी, लूट-मार, रिश्वत, (उत्कोच), विश्वासघात, ब्याज, छल-कपट को हराम (वर्जित) किया है, क्योंकि ये समस्त कार्य दूसरों के लिए हानिकारी हैं। झूठ, चुग़ली और झूठा इल्ज़ाम लगाने को भी हराम किया है क्योंकि ये सब दूसरों के लिए नुकसानदेह हैं। जुए, सट्टे और लाटरी को भी हराम किया है, क्योंकि इसमें एक व्यक्ति का लाभ हज़ारों व्यक्तियों की हानि पर टिका हुआ होता है। धोखे और छल के लेन-देन और ऐसे व्यापारिक समझौतों को भी हराम (वर्जित) किया है जिनसे किसी एकपक्ष को हानि पहुंचने की सम्भावना हो। हत्या, उपद्रव और बिगाड़ को भी 'हराम' (वर्जित) किया है क्योंकि एक व्यक्ति को अपने किसी लाभ या अपनी किसी इच्छा की पूर्ति के लिए दूसरों की जान लेने या उन्हें कष्ट देने का अधिकार नहीं है। व्यभिचार और अप्राकृतिक मैथुन को भी हराम किया है, क्योंकि ये कार्य एक ओर तो स्वयं उस व्यक्ति की सेहत को नष्ट और उसके आचरण को भ्रष्ट करते हैं और दूसरी ओर इनसे पूरे समाज में बेहयायी और अनैतिकता फैलती है,गन्दी बीमारियां पैदा होती हैं, नस्लें ख़राब होती हैं, उपद्रव मचते हैं, मानवीय सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा होता है और सभ्यता एवं संस्कृति की जड़ कट जाती है।

ये तो वे पाबंदियां हैं जो 'शारीअत' ने इसलिए लगायी हैं कि एक व्यक्ति अपने और शरीर के हक अदा करने के लिए दूसरों के हक़ को बरबाद न करे, परन्तु मानवीय सभ्यता की उन्नति और भलाई और कल्याण के लिए केवल इतना ही काफी नहीं है कि एक

व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को हानि न पहुंचाये, बल्कि इसके लिए यह भी आवश्यक है कि लोगों के आपसी सम्बन्ध इस प्रकार क़ायम किये जायें कि वे सब एक दूसरे की भलाई में सहायक हों। इस उद्देश्य से 'शरीअत' ने जो क़ानून बनाये हैं उनका केवल एक सारांश ही हम यहां प्रस्तुत करते हैं।

मानवीय सम्बन्धों का आरम्भ परिवार से होता है इसलिए सबसे पहले इस पर निगाह डालिए। परिवार वास्तव में उस समूह को कहते हैं जो पति, पत्नी और बच्चों से मिल कर बनता है। इसलिए इस्लामी नियम यह है कि रोज़ी कमाना और परिवार की ज़रूरतों को पूरा करना और पत्नी और बच्चों की रक्षा करना पुरुष का कर्तव्य है। और स्त्री का कर्तव्य यह है कि पुरुष जो-कुछ कमा कर लाये उससे वह घर का प्रबन्ध करे, पति और बच्चों के लिए अधिक-से-अधिक आराम और सुविधायें जुटाये, और बच्चों का पालन करे और उन्हें अच्छी सीख दे और बच्चों का कर्तव्य यह है कि माता-पिता की आज्ञा मानें, उनका आदर करें, और जब बड़े हों तो उनकी सेवा करें। परिवार की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए इस्लाम ने दो उपाय अपनाये हैं। एक यह कि पति और पिता को घर का प्रमुख अधिकारी नियत कर दिया है क्योंकि जिस प्रकार एक शहर का प्रबन्ध एक हाकिम के बिना और एक विद्यालय का प्रबन्ध एक प्रधान अध्यापक के बिना ठीक नहीं रह सकता उसी प्रकार घर का प्रबन्ध एक हाकिम के बिना ठीक नहीं रह सकता। जिस घर में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छाओं में स्वतंत्र हो उस घर में हर हाल में गड़बड़ी मचेगी, सुख और प्रसन्नता नाम की भी न रहेगी। पति महोदय एक ओर को पधारेंगे, पत्नी दूसरी तरफ़ की राह पकड़ेगी और बच्चों की दुर्दशा होगी। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए घर का एक हाकिम होना आवश्यक है और वह पुरुष

ही हो सकता, क्यों कि वह घर वालों के पालन-पोषण और हिफ़ाज़त के लिए ज़िम्मेदार है। दूसरा उपाय यह है कि घर से बाहर के सब कामों का बोझ पुरुष पर डाल कर स्त्री को आदेश दिया गया है कि बिना आवश्यकता के घर से बाहर न जाये। उसको घर के बाहर के कामों से इसलिए मुक्त रखा गया है कि वह शान्तिपूर्वक घर के कामों को कर सके और उसके बाहर निकलने से घर की सुख-सुविधा और बच्चों के पालन-पोषण और उनकी शिक्षा-दीक्षा में बाधा न पड़े। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियां बिल्कुल घर से बाहर पैर ही न रखें। आवश्यकता पड़ने पर उनको जाने का अधिकार प्राप्त है, परन्तु 'शरीअत' का उद्देश्य यह है कि उनका कार्य-क्षेत्र घर होना चाहिए ओर उनकी शक्ति पूरी तरह से घरेलू जीवन को सुन्दर बनाने में लगनी चाहिए। खून के रिश्तों और शादी-विवाह के सम्बन्धों से परिवार का दायरा फैलता है। इस दायरे में जो लोग एक-दूसरे से जुड़ते हैं उन के सम्बन्धों को ठीक रखने और उन्हें एक-दूसरे का सहायक बनाने के लिए 'शरीअत' ने विभिन्न नियम निश्चित किये हैं जो बड़ी तत्वदर्शिता (Wisdom) पर आधारित हैं, उनमें से कुछ नियम ये हैं:

१. जिन स्त्रियों और पुरुषों को स्वभावतः एक-दूसरे के साथ घुल-मिलकर रहना पड़ता है उनको एक-दूसरे के लिए हराम रखा है, जैसे माता और पुत्र, पिता और पुत्री, सौतेला बाप और सौतेली बेटी, सौतेली मां और सौतेला बेटा, भाई और बहन, चचा और भतीजी, फूफी और भतीजा, मामा और भानजी, मौसी और भानजा, सास और दामाद तथा श्वसुर और बहू। इन सब रिश्तों को परस्पर हराम (अभोग्य) करने के बेशुमार लाभों में एक लाभ यह है कि ऐसे पुरुष और स्त्रियों के सम्बन्ध अत्यन्त पवित्र रहते हैं और वे विशुद्ध प्रेम सहित बेलौस और निस्संकोच भाव से एक-दूसरे से मिल सकते हैं।

२. हराम रिश्तों[1] के अतिरिक्त घराने के दूसरे पुरुषों और स्त्रियों में शादी-विवाह को वैध किया गया है ताकि आपस के सम्बन्ध और अधिक बढ़ें। जो लोग एक-दूसरे की प्रकृति और स्वभाव से वाक़िफ़ होते हैं, उनके बीच शादी-विवाह का सम्बन्ध अधिक सफल होता है। अपरिचित घरानों में जोड़ लगाने से अक्सर पारस्परिक विरोध उत्पन्न हो जाता है, इसीलिए इस्लाम में 'कुफ़ू' वाले (बराबरी वाले) को 'ग़ैर कुफ़ू'[2] की अपेक्षा अच्छा समझा जाता है।

३. घराने में निर्धन और धनवान, सम्पन्न और दुखी सभी प्रकार के लोग होते हैं। इस्लाम का आदेश यह है कि प्रत्येक व्यक्ति पर सबसे ज़्यादा हक़ उसके नातेदारों का है। इसका नाम शरीअत की भाषा से 'सिलए रहमी' है, जिसके पालन की बहुत ताकीद की गई है। नातेदारों के साथ विश्वासघात करने को 'क़तअ रहमी' कहते हैं और यह इस्लाम में बड़ा गुनाह है। कोई सम्बन्धी ग़रीब हो या उस पर कोई मुसीबत आये तो सम्पन्न नातेदारों का कर्तव्य है कि उसकी सहायता करें, सदक़ा-ख़ैरात में भी विशेष रूप से नातेदारों के हक़ को तरजीह दी गई है।

४. विरासत का क़ानून भी इसी तरह बनाया गया है कि जो व्यक्ति कुछ धन छोड़कर मरे, चाहे वह कम हो, या अधिक, एक जगह सिमट कर न रह जाये बल्कि उसके नातेदारों को थोड़ा या बहुत हिस्सा पहुंच जाये। बेटा-बेटी, पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहन मनुष्य के सबसे ज़्यादा क़रीबी हक़दार हैं। इसलिए विरासत में पहले इनके हिस्से निश्चित किये गये हैं। ये यदि न हों

---

१. अर्थात् जिनमें शादी-विवाह नहीं हो सकता जैसे पिता, पुत्री और बहन, भाई आदि।

२. जो बराबरी और जोड़ का न हो।

तो इनके बाद जो नातेदार ज़्यादा करीबी हों उनको हिस्सा पहुंचता है और इस प्रकार मरने के बाद उसका छोड़ा हुआ धन बहुत से नातेदारों के काम आता है। इस्लाम का यह कानून संसार में अनुपम है और अब दूसरी जातियां भी इसकी नकल कर रही हैं, परन्तु खेद की बात है कि मुसलमान अपने अज्ञान और नासमझी के कारण प्रायः इस कानून का उल्लंघन करने लगे हैं विशेष रूप से लड़कियों को विरासत में हिस्सा न देने की रीति पाकिस्तान और भारत के मुसलमानों में बहुत फैली हुई है, हालांकि यह बहुत बड़ा ज़ुल्म है और कुरआन के स्पष्ट आदेशों के विरुद्ध है।

परिवार और घराने के अतिरिक्त मनुष्य के सम्बन्ध अपने मित्रों, पड़ोसियों, मुहल्ले वालों, नगरवासियों और उन लोगों के साथ होते हैं जिनसे उसको किसी-न-किसी प्रकार के मामले पेश आते हैं। इस्लाम का आदेश यह है कि इन सबके साथ सच्चाई, न्याय और नैतिकता का व्यवहार कीजिए। किसी को कष्ट न दीजिए, किसी को मानसिक आघात न पहुंचाइए,अश्लील बातों और बुरी बातों से बचिए। एक-दूसरे की सहायता कीजिए, बीमार-पुरसी के लिए जाइए, कोई मर जाए तो उसके 'जनाज़े' में शरीक होइए, किसी पर मुसीबत आये तो उसके साथ सहानुभूति का व्यवहार कीजिए, जो दीन, दुःखी, मुहताज और मजबूर हों, गुप्त रूप से उसकी सहायता कीजिए, अनाथों और विधवाओं का ध्यान रखिए। भूखों को भोजन कराइए, नंगों को कपड़े पहनाइए बेरोज़गार लोगों को काम पर लगाने में मदद कीजिए। यदि आपको ईश्वर ने धन दिया है तो उसको केवल अपने सुख भोगने में न उड़ा दीजिए। चांदी-सोने के बरतन को काम में लाना, रेशमी लिबास पहनना और अपने रुपये को व्यर्थ मनोरंजनों और आराम और सुविधाओं को बटोरने में नष्ट करना इसीलिए इस्लाम में मनाही है

कि जिस धन से अल्लाह के हज़ारों बन्दों के लिए रोज़ी इकट्ठा की जा सकती है उसे कोई व्यक्ति केवल अपने ही ऊपर ख़र्च न कर दे, यह एक अन्याय है कि जिस रुपये से बहुतों के पेट पल सकते हैं वह केवल एक आभूषण के रूप में आपके शरीर पर लटका रहे, एक बरतन के रूप में आप की मेज़ पर सजा रहे या एक कालीन बना हुआ आपके कमरे में पड़ा रहे, या आतिशबाज़ी बन कर आग में जल जाये। इस्लाम आपसे आपका धन छीनना नहीं चाहता जो कुछ आपने कमाया है या तरके में पाया है उसके वारिस आप ही हैं। वह आपको इस बात का पूरा हक देता है कि अपने धन से आनन्द उठाओ। वह इसको भी वैध रखता है कि जो पदार्थ ईश्वर ने आपको दिये हैं उसके चिह्न आपके वस्त्र और मकान और सवारी में दीख पड़ें, परन्तु उसकी शिक्षा का मक़सद यह है कि आप एक सादा, सरल और संतुलित और मध्यवर्ती जीवन अपनायें। अपनी आवश्यकताओं को हद से न बढ़ायें और अपने साथ अपने नातेदारों, मित्रों, पडोसियों, देशवासियों और जाति-बंधुओं और आम इंसानों के हक और अधिकारों का भी ध्यान रखें।

इन छोटे क्षेत्रों से हट कर अब आप विस्तृत क्षेत्र पर निगाह डालिये, जिसके अन्तर्गत विश्व के समस्त मुसलमान आ जाते हैं। इस क्षेत्र के लिए इस्लाम ने ऐसे कानून और ज़ाब्ते निश्चित किये हैं जिससे मुसलमान एक दूसरे की भलाई में सहायक हों और बुराइयां प्रकट होने की संभावनाओं को यथासम्भव उत्पन्न ही न होने दिया जाए, उदाहरणार्थ उनमें से कुछ की ओर हम यहां संकेत करते हैं।

१– जातीय नैतिकता की रक्षा के लिए यह नियम नियत किया गया कि जिन स्त्रियों और पुरुषों में परस्पर विवाह अवैध नहीं है, वे एक-दूसरे से स्वतंत्र मेल-जोल न रखें। स्त्री-समाज अलग रहे और पुरुष-समाज अलग, स्त्रियां अधिकतर घरेलू जीवन के

प्रति अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान दें। यदि आवश्यकता पड़ने पर बाहर निकलें तो श्रृंगार के साथ न निकलें। सादे कपड़े पहन कर आयें, शरीर को भली-भांति ढांकें, चेहरा और हाथ खोलने की यदि अत्यन्त आवश्यकता न हो, तो उनको भी छिपायें और यदि वास्तव में कोई आवश्यकता पड़ जाये तो केवल उसको पूरा करने के लिए हाथ-मुंह खोलें। इसके साथ पुरुषों के लिए आदेश है कि पराई स्त्रियों की ओर न देखें। अचानक निगाह पड़ जाये तो हटा लें। दोबारा देखने की कोशिश करना बुरा है, और उनसे मिलने की कोशिश बहुत ही बुरी है। प्रत्येक पुरुष और स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने चरित्र की हिफ़ाज़त करे और ईश्वर ने विषयवासना की पूर्ति के लिए विवाह की जो सीमा नियत कर दी है, उससे बाहर निकलने की कोशिश करना तो अलग इसकी इच्छा भी अपने मन में पैदा न होने दे।

२– जातीय नैतिकता की रक्षा के लिए यह नियम नियत किया गया कि कोई पुरुष घुटने और नाभि के बीच का भाग और कोई स्त्री चेहरे और हाथ के सिवा अपने शरीर का कोई भी अंग किसी के सामने न खोले चाहे वह उसका करीबी नातेदार ही क्यों न हो। इसको 'शरीअत' (धर्म-शास्त्र) की भाषा में 'सत्र' कहते हैं और इसका छिपाना प्रत्येक स्त्री और पुरुष के लिए अनिवार्य है। इस्लाम का उद्देश्य यह है कि लोगों में लज्जा का भाव उत्पन्न हो और बेहयायी एवं अश्लीलता न फैल सके जिससे अन्त में दुराचार और अनैतिकता उत्पन्न होती है।

३– इस्लाम ऐसे मनोरंजन और खेलों को भी अच्छा नहीं समझता जो चरित्र और आचरण को ख़राब करने वाले और बुरी इच्छाओं को उभारने वाले और समय, स्वास्थ्य और रुपये को नष्ट करने वाले हों। मनोरंजन स्वयं नितांत आवश्यक चीज़ है। मनुष्य

में जीवन का सत्व और कर्म की शक्ति उत्पन्न करने के लिए कर्म और परिश्रम के साथ इसका होना भी आवश्यक है, परन्तु वह ऐसा होना चाहिए कि जो प्राण को स्वस्थ और प्रफुल्लित करने वाला हो न कि और अधिक अपवित्र और मलिन बना देने वाला। बेहूदा मनोरंजन जिनमें हज़ारों व्यक्ति एक साथ बैठकर अपराधों की फ़र्जी घटनायें और बेशर्मी के दृश्य देखते हैं, सम्पूर्ण जाति के चरित्र और स्वभाव को बिगाड़ने वाली चीज़ें हैं, भले ही देखने में वे कैसी ही शोभायमान और सुन्दर हों।

४– जातीय एकता, भलाई और कल्याण के लिए मुसलमानों को ताकीद की गई है कि पारस्परिक विरोध से बचें, साम्प्रदायिकता से दूर रहें, किसी मामले में मतभेद हो तो स्वच्छहृदयता के साथ कुरआन और 'हदीस' से उसका निर्णय कराने की कोशिश करें। यदि निपटारा न हो सके तो आपस में लड़ने के बदले ईश्वर पर उसका फ़ैसला छोड़ दें। जातीय भलाई और कल्याण के कामों में एक-दूसरे को सहयोग दें। अपनी जाति के सरदारों का अनुवर्तन करते रहे। झगड़ा करने वालों से अलग हो जायें और आपस की लड़ाइयों से अपनी शक्ति को नष्ट और कलंकित न करें।

५– मुसलमानों को ग़ैर-मुस्लिम जातियों से विद्याओं और कलाओं को प्राप्त करने और उनके उपयोगी तरीक़ों के सीखने की पूरी इजाज़त है, परन्तु जीवन में उनका अनुकरण करने से रोक दिया गया है। एक जाति (संस्कृति और सभ्यता आदि में) दूसरी जाति का अनुकरण उसी समय करती है, जब वह अपनी हीनता और लघुता को मान लेती है यह निकृष्टतम प्रकार की दासता है, अपनी पराजय की स्पष्ट घोषणा है और इसका अन्तिम परिणाम यह है कि अनुकरण करने वाली जाति की सभ्यता नष्ट हो जाती है। इसीलिए अल्लाह के रसूल (सल्ल०) ने अन्य जातियों के रहन-सहन

इख़्तियार करने से सख़्ती से रोका है। यह बात साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है। किसी जाति की शक्ति उसके वस्त्र या उसके रहन-सहन से नहीं होती बल्कि उसके ज्ञान और उसके संगठन और उसकी कार्यशीलता के कारण से होती है। अतः यदि शक्ति प्राप्त करनी चाहते हैं तो वे चीज़ें लीजिए जिनसें जातियां शक्ति प्राप्त करती हैं न कि वे चीज़ें जिनसे जातियां गुलाम होती हैं और अन्त में दूसरों में घुल-मिलकर अपनी जातीय सत्ता ही नष्ट कर देती हैं।

ग़ैर-मुस्लिमों के साथ व्यवहार करने में मुसलमानों को पक्षपात और संकीर्णता की शिक्षा नहीं दी गई है। उनके महापुरुषों को बुरा कहने या उनके धर्म का अपमान करने से रोका गया है। उनसे स्वयं झगड़ा निकालने से भी रोका गया है। वे यदि हमारे साथ मेल-मिलाप रखें और हमारे हक और अधिकार पर हाथ न डालें तो हमको भी उनके साथ मेल-जोल रखने और मित्रतापूर्ण व्यवहार करने और इन्साफ़ के साथ पेश आने की शिक्षा दी गई है। हमारी इस्लामी सज्जनता चाहती है कि हम सबसे बढ़कर मानवीय सहानुभूति और सद्व्यवहार को अपनायें। स्वभाव और आचरण में कुटिलता और अन्याय और तंगदिली मुसलमान के लिए शोभनीय नहीं है। मुसलमान संसार में इसलिए पैदा किया गया है कि अच्छे स्वभाव और सज्जनता और नेकी का आदर्श रूप प्राप्त करे और अपने सिद्धान्तों से लोगों के दिलों को जीत ले।

सृष्टि की समस्त चीज़ों का हक

अब हम संक्षेप में चौथे प्रकार के हक बयान करेंगे।

ईश्वर ने सृष्टि के बेशुमार जीवन-जन्तु आदि पर मनुष्य को अधिकार दिये हैं। मनुष्य अपनी शक्ति से उन्हें अधीन करता है,

उनसे काम लेता है, उनसे फायदा उठाता है। सर्वोच्च प्राणी होने के कारण उसे ऐसा करने का पूरा हक प्राप्त है परन्तु इसके मुक़ाबले में उन चीज़ों के प्रति मनुष्य के भी कुछ कर्तव्य हैं और वे ये हैं कि मनुष्य उन्हें फ़िज़ूल नष्ट न करे। उनको बिना किसी ज़रूरत के नुक़सान या तकलीफ़ न पहुंचाये। अपने फ़ायदे के लिए उनको कम-से-कम हानि पहुंचाये जो आवश्यक हो और उन्हें काम में लाने के लिए उत्तम-से-उत्तम ढंग अपनाये।

'शरीअत' (धर्म-शास्त्र) में इसके लिए अधिक आदेश दिये गये हैं, जैसे जानवरों को केवल उस समय मारने की इजाज़त दी गई है जबकि उनसे हानि पहुंचने का भय हो या फिर खाद्य के लिए उन्हें मारा जा सकता है; परन्तु अकारण खेल और मानोरंजन के लिए उनकी जान लेने से रोका गया है। खाने के जानवरों के वध के लिए 'ज़ब्ह' का तरीक़ा नियत किया गया जो जानवरों से लाभदायक मांस प्राप्त करने का सबसे ज़्यादा अच्छा तरीक़ा है। इसके सिवा जो तरीक़े हैं वे यदि कम कष्टदायक हैं तो उनमें मांस के अनेक लाभकारी गुण नष्ट हो जाते हैं और यदि वे मांस के लाभकारी गुणों को सुरिक्षत रखने वाले हैं तो 'ज़ब्ह' के तरीक़े से अधिक क़ष्टदायक हैं। इस्लाम इन दोनों पहलुओं से बचना चाहता है। इस्लाम में जानवरों को तकलीफ़ देकर बेरहमी के साथ मारने को बहुत ही बुरा माना गया है। वह ज़हरीले जानवरों और हिंसक पशुओं को केवल इसलिए मारने की आज्ञा देता है कि मनुष्य के प्राण उनके प्राण की अपेक्षा अधिक बहुमूल्य हैं, परन्तु उनको भी तकलीफ़ देकर मारने को अवैध कहता है। जो जानवर सवारी और बोझ ढोने के काम आते हैं उनको भूखा रखने और उनसे कठिन मशक़्क़त लेने और उनको बेरहमी के साथ मारने-पीटने से रोकता है। पक्षियों को अकारण कैद करने को भी बुरा ठहराता है। जानवर तो जानवर

इस्लाम इसको भी पसन्द नहीं करता कि पेड़ों को व्यर्थ हानि पहुंचाई जाये। आप उनके फल तोड़ सकते हैं, परन्तु उन्हें बिला वजह नष्ट करने का आपको कोई हक नहीं। वनस्पतियों में तो फिर भी प्राण होते हैं। इस्लाम किसी निर्जीव वस्तु को भी फ़िज़ूल नष्ट करने को वैध नहीं कहता, यहां तक कि पानी को भी व्यर्थ बहाने से रोकता है।

विश्व-व्यापी और सार्वकालिक 'शरीअत'

यह उस 'शरीअत' (धर्म-शास्त्र) के आदेशों और क़ानूनों का एक बहुत ही सरसरी सारांश है जो हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के द्वारा सम्पूर्ण संसार के लिए और सदैव के लिए भेजी गई। इस शरीअत में मनुष्य और मनुष्य के बीच सिवाय विचारधारा और कर्म के किसी और चीज़ के आधार पर फ़र्क नहीं किया गया है। जिन धर्मों और 'शरीअतों' में वंश और देश और वर्ण की दृष्टि से मनुष्य में भेद किया गया है वे कभी भी विश्व-व्यापी नहीं हो सकतीं, क्योंकि एक वंश विशेष का मनुष्य दूसरे वंश का मनुष्य नहीं बन सकता, न सम्पूर्ण संसार सिमट कर एक देश में समा सकता है, न हब्शी की सियाही और चीनी की पीतिमा और अंग्रेज़ की श्वेतता कभी बदल सकती है। इसलिए इस प्रकार के धर्म और क़ानून अनिवार्यतः एक ही जाति में रहते हैं। उनकी अपेक्षा इस्लाम की 'शरीअत' एक विश्व-व्यापी 'शरीअत' है। प्रत्येक व्यक्ति जो "ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह"[1] पर ईमान लाये वह 'शरीअत' की दृष्टि से मुस्लिम जाति में बिलकुल समान अधिकार के साथ शामिल हो सकता है। यहां वंश, भाषा, देश, स्वदेश वर्ण किसी चीज़ के लिए भी कोई विशेषता नहीं।

---

१. अर्थात् अल्लाह के सिवा कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं और मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।

मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी

मौलाना मौदूदी (१९०३–१९७९) वर्तमान युग में इस्लाम के मुख्य प्रेरणा स्रोत रहे हैं। वे अपने समय के एक महान इस्लामी विचारक और लेखक थे।

उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन युगापेक्षित इस्लाम की व्याख्या करने और उसके सन्देश को आम करने तथा इस्लामी जीवन–व्यवस्था क़ायम करने की कोशिश में लगा दिया। इस जद्दो जेहद में उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। सन् १९४१ में उन्होंने 'जमाअत इस्लामी' की स्थापना की जिसके वे १९७२ ई० तक अमीर (अध्यक्ष) रहे, जो कि वर्तमान युग का एक महत्वपूर्ण इस्लामी संगठन है। १९४८ से १९६७ ई० तक की अवधि में उन्हें चार बार जेल जाना पड़ा जहां पाकिस्तान की अनेक जेलों में पांच वर्ष का समय व्यतीत हुआ। १९५३ ई० में तो उनकी एक पुस्तक को आधार बनाकर फ़ौजी अदालत ने उन्हें फांसी की सज़ा सुनायी जो बाद में आजीवन कारावास में बदल दी गयी। मौलाना मौदूदी ने १०० से भी अधिक पुस्तकें लिखीं जो ज्ञानवर्धक और अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हुईं। उन की कुछ पुस्तकों का देश–विदेश की ४० भाषाओं में रूपांतरण हो चुका है।

फिर यह 'शारीअत' एक सर्वकालिक 'शारीअत' भी है। इस के क़ानून किसी विशेष जाति और विशेष युग के रीति-रिवाज़ पर अवलम्बित नहीं हैं बल्कि उस प्रकृति के सिद्धान्त पर निर्भर हैं जिसे लेकर मनुष्य संसार में जन्म लेता है। जब यह प्रकृति प्रत्येक युग और प्रत्येक अवस्था में कायम है तो वे क़ानून और नियम भी प्रत्येक युग और अवस्था में क़ायम रहने चाहिएं, जो इस (प्रकृति) पर अवलम्बित हों।